वामनपुराण-परिचय

डॉ. लीलाधर 'वियोगी'

पुराण-परिचय माला—१४

वामनपुराण-परिचय

डॉ. लीलाधर 'वियोगी'
एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (संस्कृत), साहित्यरत्न, पी-एच. डी.
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग
सनातन धर्म कॉलेज (लाहौर), अम्बाला छावनी (हरियाणा)

सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-६

पुराण-परिचय-माला के अन्तर्गत प्रकाशित

१. ब्रह्मपुराण-परिचय
२. विष्णुपुराण-परिचय
३. शिवपुराण-परिचय
४. पद्मपुराण-परिचय
५. भागवतपुराण-परिचय
६. नारदपुराण-परिचय
७. मार्कण्डेयपुराण-परिचय
८. अग्निपुराण-परिचय
९. भविष्यपुराण-परिचय
१०. ब्रह्मवैवर्तपुराण-परिचय
११. लिंगपुराण-परिचय
१२. वराहपुराण-परिचय
१३. स्कन्दपुराण-परिचय
१४. वामनपुराण-परिचय

ISBN 81-87182-49-0

प्रकाशन : सूर्य भारती प्रकाशन
२५९६, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

दूरभाष : ३२६६४१२

टाइपसैटिंग : डिलाइट प्रिन्टर्स
३८०७/६ कन्हैयानगर, त्रिनगर, दिल्ली-११००३५

मुद्रक : एस. एन. प्रिंटर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली

प्रथम संस्करण : जनवरी २००१

मूल्य : ६०.००
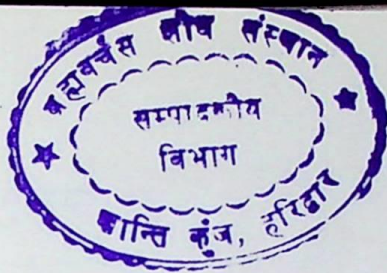
समर्पण

विश्व गायत्री परिवार, शान्ति-कुंज हरिद्वार के संचालक,

राष्ट्रीयता की प्रखर चेतना के सशक्त वाहक

धर्म तथा विज्ञान के समन्वय-कर्ता,

नए भारत के निर्माण में तल्लीन,

परमादरणीय, श्रद्धेयवर

डॉ० प्रणव पण्ड्या जी

को सादर सस्नेह।

—*लीलाधर 'वियोगी'*

2/2/2002

वृद्धवाक्यामृतं पीत्वा तदुक्तमनुमात्य च।
या तृप्ति जायते पुंसां सोमपाने कुतस्तथा।। (अ. ९५/६७)

वृद्ध व्यक्तियों के कहे हुए वचनों के अमृत को पीकर, उन्हें ध्यानपूर्वक सुनकर, तदनुसार आचरण करने वाले व्यक्तियों को जो तृप्ति प्राप्त होती है, जो आनंद मिलता है वह आनंद तो सोमपान में भी नहीं होता।

संरोहतीषुणा विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम्॥ (अ. ५४/७)

वाण से बिंधा हुआ घाव भर जाता है, कुल्हाड़े से काटा हुआ वन पुनः हरा-भरा हो जाता है, किन्तु वाणी से किया गया दोषपूर्ण तथा बीभत्स घाव नहीं भरता।

पृष्ठमांसाशिनो मूढ़ास्तथैवोत्कोच जीविनः।
क्षिप्यन्ते वृकभक्षे ते नरके रजनी चर।। (अ. १२/३७)

हे रजनीचर! जो पीठ पीछे शिकायत करते हैं, चुगली करते एवं घूस लेते हैं, उन्हें वृकभक्ष नामक नरक में डाला जाता है।

अनुक्रम

नम्र निवेदन

इकतालीस वर्षों तक विभिन्न स्तरों पर हिन्दी और संस्कृत का अध्यापन करने के पश्चात् २८ फरवरी, १९९५ को स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग तथा संस्कृत विभाग के अध्यक्ष-पद से सेवा-निवृत्त होने पर एक संकल्प किया—अठारह पुराणों का संक्षेप-सार रूप में परिचय देने के लिए, ऐसी पुस्तकें लिखी जाएँ; जो जन-सामान्य के साथ-साथ, इस सम्बन्ध में जिज्ञासा रखने वाले मान्य विद्वानों के लिए भी उपयोगी हों। इस संकल्प का कारण यह था कि पुराण बहुत विशालाकार ग्रन्थ हैं। वे बहुत-ही महँगे और प्राय: अप्राप्य एवं असुलभ हैं। ऐसी अवस्था में पुराणों का परिचय देने वाली रचनाएँ पाठकों के मन में पुराणों के प्रति जिज्ञासा तथा रुचि जागृत करेंगी और पुराणों में जो भारतीय संस्कृति की गरिमा, धर्म-साधना, ज्ञान-विज्ञान की अनुपमेय सम्पदा छिपी हुई है, उसकी ओर उनका ध्यान आकृष्ट होगा।

पुराणों के सम्बन्ध में देशी-विदेशी विद्वानों की भ्रमपूर्ण टिप्पणियों एवं एकांगी, एकपक्षीय रचनाओं के कारण, पुराणों का उचित प्रचार-प्रसार तथा तर्क-संगत मूल्यांकन प्राय: नहीं हो पाया। जहाँ एक ओर सनातन धर्मावलम्बी पण्डितों ने श्रद्धातिरेक का परिचय दिया, वहाँ आर्य-समाज के विद्वानों ने मात्र निषेधात्मक खण्डन का आश्रय लिया। परिणामत: नीर-क्षीर विवेक द्वारा, वस्तु-परक रीति से पुराणों का अध्ययन-मूल्यांकन कम ही हो पाया है।

सर्वसाधारण को सरल सुबोध भाषा में कथा, दृष्टान्त, रूपक आदि के माध्यम से धर्म, नीति, सदाचार की शिक्षा देने के लिए, मानव-समाज में नैतिक मूल्यों के विकास के लिए, पुराणों की रचना हुई है। वेदों-उपनिषदों में प्रतिपादित तत्त्व-ज्ञान कुछ विशिष्ट विद्वानों तक ही सीमित रहा। सामान्य लोगों के लिए

धर्म-भावना तथा अध्यात्म-विद्या के गूढ़ रहस्यों को, आख्यान शैली में पुराणों में ही प्रस्तुत किया गया है। पुराणों के सम्बन्ध में श्रद्धेय श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार ने लिखा है—'पुराण अध्यात्मशास्त्र हैं, पुराण दर्शनशास्त्र हैं, पुराण धर्मशास्त्र हैं, पुराण कलाशास्त्र हैं, पुराण इतिहास हैं पुराण जीवनी-कोश हैं, पुराण सनातन-आर्य संस्कृति के स्वरूप हैं, और पुराण वेद की सरस, सरलतम व्याख्या हैं। पुराणों में तीर्थ-रहस्य और तीर्थ-माहात्म्य है। पुराणों में तीर्थों का इतिहास है। परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तर रहस्य, कर्म-रहस्य, कर्मफल-निरूपण, नक्षत्र-विज्ञान, रत्न-विज्ञान, आयुर्वेद, शकुन-शास्त्र आदि महत्त्वपूर्ण विषयों को सरल भाषा में स्पष्ट करना पुराणों का ही काम है।' वस्तुत: पुराणों का एक अद्वितीय, विस्मयकारी एवं दिव्य संसार है, जिसमें विचरण करने से अनेकानेक विषयों का ज्ञान होता है। पाठकों के मन में उदात्त भावनाओं का संचार हो जाता है। धर्म एवं सदाचार की ओर उनकी प्रवृत्ति होती है। पाठक आत्मोत्थान की ओर अग्रसर होता है। उसके चिन्तन को एक नई और सही दिशा मिलती है। सचमुच ये पुराण भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं, भारतीय ज्ञान-विज्ञान के विश्व-कोश हैं।

इस रचना में हम अष्टादश पुराणों में से चौदहवें 'वामन पुराण' का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं। इस कृति में, अत्यन्त संक्षेप में 'लिंग पुराण' में प्रतिपादित कतिपय मुख्य-मुख्य विषयों, विशेषताओं का परिचय दिया गया है। इस पुस्तक में पुराण के विषय में अपेक्षित जानकारी इस रूप में दी गई है कि पाठकों को इस पुराण के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान हो सके और उनके मन में और अधिक जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो। वर्ण्य-विषय को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करना तो हमारा लेखकीय दायित्व है ही, जिसका पूर्णतया निर्वाह किया गया है।

यहाँ, यह स्पष्ट करना उचित होगा कि 'वामन पुराण-परिचय' में हमारी दृष्टि बौद्धिक एवं धार्मिक, दोनों प्रकार की रही है। दोनों दृष्टिकोणों में सामंजस्य स्थापित करने का भरसक प्रयास किया गया है। पुराण-प्रतिपादित धार्मिक भावना का निष्पक्ष निरूपण किया गया है, सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सम्मान व्यक्त किया

गया है और विवादास्पद विषयों का तर्क-पूर्ण विवेचन किया गया है। यह छोटी-सी रचना 'वामन पुराण' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के सम्बन्ध में पाठकों की जिज्ञासाओं को कितना शान्त कर पाएगी, उनके मन में और अधिक जानने की कितनी उत्सुकता जागृत करेगी, विद्वानों को यह कितना सन्तोष दे पाएगी, धार्मिक भावना से पढ़ने वाले पाठकों को कितना आनंद दे पाएगी, ऐसे बहुत सारे प्रश्न हमारे मन में इस समय उठ रहे हैं और इसी मन:स्थिति में यह रचना, पुराण-परिचय माला का चौदहवाँ पुष्प 'वामन पुराण-परिचय' आप सबकी सेवा में सादर प्रस्तुत कर रहा हूँ।

साठ वर्ष की अवस्था को पार करने के पश्चात् चार लाख श्लोकों वाले अठारह पुराणों के बीहड़ वन में भटकना, उनमें से कुछ सार्थक, कुछ उपयोगी सामग्री का संकलन करना, उनकी छानबीन करना, क्या सम्भव है ? क्या यह बहुत अधिक श्रम-साध्य, व्यय-साध्य एवं समय-साध्य बृहद् कार्य नहीं है ? हमारा यह संकल्प क्या एक चींटी का पर्वत-शिखर पर पहुँचने का दुष्कर अनुष्ठान नहीं है ? इस सम्बन्ध में बस मुझे इतना ही कहना है कि अध्यापन-शिक्षण कार्य, मेरे लिए निरन्तर ईश्वर की उपासना के समान रहा है और पुराणों के सम्बन्ध में यह शोध-अध्ययन भी मेरे लिए एक विनम्र सारस्वत अनुष्ठान है, एक यज्ञ है। 'वामन पुराण-परिचय' इस यज्ञ की चौदहवीं आहुति है। यह मेरे लिए एक ईश्वरीय कार्य है।

अन्त में मैं उन सभी पुराण-मर्मज्ञ विद्वानों के प्रति हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनकी कृतियों से मेरा ज्ञानवर्द्धन हुआ है और 'वामन पुराण-परिचय की रचना में उनसे सहायता मिली है। उन सभी मित्रों, बन्धुओं, आत्मीयजनों का भी धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्षत: तथा परोक्षत: इस कार्य में मुझे अनेक-विध सहायता प्रदान की है।

'कल्याण के ५६ वें वर्ष के 'विशेषांक' के रूप में प्रकाशित 'वामनपुराणांक' को इस कृति का आधार बनाया गया है। सर्वत्र इसी अंक को उद्धृत किया गया है। हम गीताप्रेस गोरखपुर के अधिकारियों के प्रति आभारी हैं।

डॉ. (श्रीमती) मालती त्रिपाठी द्वारा लिखित 'वामनपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन' से भी पर्याप्त लाभ उठाया गया है। हम डॉ. मालती त्रिपाठी के भी आभारी हैं।

संस्कृति संस्थान, बरेली द्वारा दो भागों में प्रकाशित 'वामनपुराण' से भी हमने पर्याप्त सहायता ली है। अतः संस्कृति संस्थान के अधिकारयों के प्रति भी हम धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

—लीलाधर 'वियोगी'

२१-डी, दयाल बाग,
अम्बाला छावनी (हरियाणा) १३३००१

१ प्रारम्भिक विवेचन

क्रम

पुराणों के अध्ययन में इनके क्रम का निर्धारण एक महत्त्वपूर्ण विषय माना जाता है। अत: हम सर्वप्रथम 'वामनपुराण' के क्रम की चर्चा कर रहे हैं। 'विष्णु पुराण' में कहा गया है—'चतुर्दशं वामनं।' अर्थात् वामन पुराण चौदहवाँ पुराण है। (३/६/२३) 'भागवतपुराण' में भी इसे चौदहवें क्रम पर रखा गया है (१२/१३/७)। साथ ही इस पुराण की श्लोक-संख्या निर्दिष्ट है। 'मत्स्यपुराण' में भी 'वामनपुराण' की गणना चौदहवें क्रम पर वर्णित है। इसके साथ ही इसके वक्ता-श्रोता का भी संकेत किया गया है (अ. ५३/४४)। 'नारदपुराण' में भी इसकी गणना चौदहवें क्रम पर हुई है (अ. १०५)। 'वराह पुराण' में 'चतुर्दशंवामन' कहा गया है (१११/७२)। 'कूर्मपुराण' में भी इसका क्रम चौदहवाँ ही बताया गया है (अध्याय-१/१४)। 'लिंगपुराण' में इसे तेरहवें क्रम पर बताया गया है (अ. ३९/६३)। किन्तु 'मार्कण्डेयपुराण' में इसका क्रम चौदहवाँ कहा गया है (अ. १३४/११)। ब्रह्मवैवर्त में भी इसे चौदहवें क्रम पर ही रखा गया है (१३३/१९)। स्पष्ट हैं कि एक अपवाद को छोड़ कर वामनपुराण को सभी पुराणों में चौदहवाँ पुराण ही स्वीकार किया गया है। स्वयं 'वामनपुराण' के अन्त में कहा गया है—'चतुर्दशं वामनमाहु:' (अ. ९५/११)। अत: 'वामनपुराण' का क्रम चौदहवाँ ही मानना उचित है।

वक्ता-श्रोता

'मत्स्यपुराण' के अनुसार 'वामनपुराण' के वक्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हैं—'त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुख' अ. ५३/४४), किन्तु वर्तमान समय में उपलब्ध 'वामनपुराण' के वक्ता पुलस्त्य ऋषि हैं और पुलस्त्यजी ने कहीं भी यह नहीं कहा कि मैंने यह कथा ब्रह्माजी से सुनी थी। नारद जी द्वारा प्रश्न पूछने पर पुलस्त्य ऋषि वामन पुराण की कथा कहते हैं—

पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्विदां वरम्।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम्॥ (अ. १/२)

आश्रम में विराजमान वाग्विदों में श्रेष्ठ पुलस्त्य जी से वामनावतार सम्बन्धी पुराण के विषय में नारद जी ने पूछा। अतः 'वामनपुराण' के वक्ता एवं श्रोता क्रमशः पुलस्त्य ऋषि एवं नारदमुनि हैं। बीच-बीच में कुछ कथाओं के वक्ता सूत जी (लोमहर्षण ऋषि) भी हैं। 'वामनपुराण' के अन्त में भी यही कहा गया है—

एतन्मया पुण्यतमं पुराणं तुभ्यं तथा नारद कीर्तितं वै

नारद जी! मैंने आपसे अत्यन्त पावन पुराण का कथन किया है। स्पष्ट ही पुलस्त्य और नारद ही इस पुराण के वक्ता-श्रोता हैं।

श्लोक संख्या 'वामनपुराण' की श्लोक-संख्या दस हज़ार मानी गई है। मत्स्यपुराण में कहा गया है—'पुराणं दश साहस्रं' (अ. १/४५)। 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में यही श्लोक-संख्या स्वीकृत है (अ. १३३/१९) तथा 'नारदपुराण' में इसे 'दशसाहस्रसंख्यकम्' अर्थात् दस हज़ार श्लोकों वाला पुराण माना गया है। 'भागवतपुराण' में कहा गया है—'वामनं दश कीर्तितम्' अर्थात् 'वामनपुराण' में दस हज़ार श्लोक कहे गये हैं (१२/१३/७)। उपर्युक्त सभी उल्लेखों से स्पष्ट है कि 'वामनपुराण' से दस हज़ार श्लोक थे, किन्तु वर्तमान समय में जो वामनपुराण प्राप्त है उसमें ६००० श्लोक ही हैं। ४००० श्लोकों की न्यूनता का क्या कारण होगा, इसके लिए कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि 'वामनपुराण' का 'उत्तर भाग' भी रहा होगा। 'नारदपुराण' में तो 'वामनपुराण' के दो भागों का ही उल्लेख हुआ है—'भागद्वय समामुक्तं।' (१०५/२) किन्तु यह दूसरा भाग किसी धर्म-विरोधी षड्यन्त्र का शिकार हो गया अथवा किसी आकस्मिक घटना से नष्ट हो गया। अतः वर्तमान समय में उपलब्ध 'वामनपुराण' में ९५ अध्याय तथा ६००० श्लोक हैं। वास्तविक श्लोक-संख्या ५८१५ है।

नामकरण

भगवान् विष्णु के अवतार वामन के द्वारा दैत्यराज बलि से तीन पग भूमि की याचना करके बलि को पराभूत करने का वर्णन इस पुराण में हुआ है।

वामनावतार की कथा इस पुराण में प्रमुख रूप से वर्णित होने से इस ग्रन्थ का नाम 'वामनपुराण' है। यद्यपि अन्य भी अनेक कथाओं का वर्णन इस पुराण में हुआ है, अनेक विषयों की चर्चा इस ग्रन्थ में हुई है, किन्तु प्रधान-रूप में वामन भगवान् की विस्तृत कथा का वर्णन होने से इस पुराण का नाम 'वामनपुराण' है।

वर्गीकरण

पुराणों का अध्ययन करने वाले मर्मज्ञ विद्वानों ने पुराणों का वर्गीकरण चार रूपों में किया है—सात्त्विक, राजस, तामस तथा संकीर्ण पुराण। इस विषय में 'मत्स्यपुराण' में कहा गया है—

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते॥ (अ. ५३/६७-६८)

जिन पुराणों में प्रधान-रूप से विष्णु का माहात्म्य वर्णित है वे सात्त्विक, जिनमें ब्रह्मा और अग्निदेवता का प्रमुखतया वर्णन हुआ है, वे राजस, जिनमें शिव की महिमा का अधिक गायन हुआ है वे तामस तथा सरस्वती और पितरों के माहात्म्य से युक्त पुराण संकीर्ण कहलाते हैं। 'वामनपुराण' में भगवान् विष्णु के वामन-रूप अवतार की महिमा वर्णित है, अतः इसे सात्त्विक पुराण माना जाना चाहिए, किन्तु 'पद्मपुराण' में 'वामनपुराण' दो राजस पुराणों के वर्ग में रखा गया है—

ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे॥

(उत्तरखण्ड/१६३/८४)

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन तथा ब्रह्म—ये छः राजस पुराण गिने गये हैं। आधुनिक विद्वानों को यह वर्गीकरण मान्य नहीं है, क्योंकि इसमें एक देवता विशेष की सात्त्विकता को ही आधार मानकर यह वर्गीकरण किया गया है। इससे वैष्णवों की श्रेष्ठता का बोध कराने का प्रयास किया गया है। आधुनिक विद्वान् 'वामनपुराण' को 'साम्प्रदायिक' पुराण मानते हैं अर्थात्

यह पुराण एक सम्प्रदाय विशेष की महिमा का मुख्य रूप से प्रतिपादन करता है।

रचनाकाल

प्रोफेसर एच.एच विल्सन महोदय वामन पुराण को मात्र तीन सौ वर्ष पुराना मानते हैं और इसे पुराणों की श्रेणी में भी नहीं रखते। जिस पुराण का वर्णन 'नारदपुराण' (अ. १०५) में हुआ हो तथा जिसकी विषय सूची नारदपुराण में दी गई विषय-सूची से मिलती हो, उसे मात्र तीन सौ वर्ष पुराना ग्रन्थ मानना तर्क-हीन एवं सर्वथा असंगत है। कालिदास के काव्य से प्रभावित होने के कारण यह तो स्पष्ट ही है कि इसका रचनाकाल कालिदास के समय के पश्चात् का ही है। शैवमत और वैष्णव मत में सहज उदारता का वर्णन, सहिष्णुता का परिचय 'वामनपुराण' में दिया गया है। सन् ६०० ई. तथा ९०० ई. का काल-खण्ड साम्प्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से भारतवर्ष का महत्त्वपूर्ण समय था। शैवों-वैष्णवों में परस्पर सद्भाव का यह श्रेष्ठ समय था। अत: आचार्य बलदेव उपाध्याय 'वामनपुराण' का रचनाकाल सन् ६००-९०० ई. के मध्य स्वीकार करते हैं।

महापुराणता

'वामनपुराण' में दस हज़ार श्लोक थे, किन्तु वर्तमान संस्करणों में केवल छह हजार श्लोक ही रह गये हैं। अत: इसे एक लघु आकार का पुराण ही माना जाएगा। 'महापुराण' के सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर, इन पंचलक्षणों का भी पूर्णतया निर्वाह नहीं हुआ है। वंश, वंशानुचरित तथा सर्ग का ही प्रतिपादन इसमें हुआ है। उक्त सभी लक्षणों का निर्वाह न होने पर भी 'विष्णुपुराण' की इस उक्ति के कारण 'महापुराणान्येतानि ह्याष्टादश महामुने।' (३/६/२४) ये सभी १८ पुराण ही 'महापुराण' हैं। वामनपुराण को भी महापुराण माना जाता है। यह तीर्थ-महिमा-प्रधान महापुराण है।

रचना-स्थल

तीर्थ-महिमा-प्रधान 'वामनपुराण' में कुरुक्षेत्र तथा पृथूदक (पिहोवा) को देश का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ बताया गया है। कुरुक्षेत्र का बहुविस्तृत वर्णन किया गया

है जितना अन्य किसी पुराण में नहीं हुआ। यहाँ पर प्रवहमाण सरस्वती नदी तथा उसके तटवर्ती अनेक तीर्थों का भी वर्णन हुआ है। वामनपुराण में कुरुक्षेत्र के इतिहास, भूगोल, धार्मिक-साँस्कृतिक महत्त्व की भी विस्तृत जानकारी दी गई है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का मत है कि वामन पुराण की रचना सरस्वती-तट पर कुरुक्षेत्र में ही हुई थी। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार यह (पुराण) कुरुक्षेत्र मण्डल में उत्पन्न हुआ था। ऐसा मानना सर्वथा उचित है, क्योंकि क्षेत्रों तथा तीर्थों में यह क्रमशः कुरुजांगल तथा पृथूदक को सर्वश्रेष्ठ मानता है और दोनों वस्तुएँ कुरुक्षेत्र में विद्यमान है। (पुराणविमर्श, पृ. ५६०) इस सम्बन्ध में प्रस्तुत श्लोकार्ध अवतरित करना उचित होगा—

क्षेत्रेषु यद्वत् कुरुजाङ्गलं वरं तीर्थेषु तद्वत् प्रवरं पृथूदकम्

(१२/४५)

अर्थात् क्षेत्र में कुरु (जांगल) क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। इसी प्रकार तीर्थों में पृथूदक (पिहोवा) सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। आचार्य बलदेव उपाध्याय की मान्यता उचित ही माना जा सकती है। अतः वामनपुराण का रचना-स्थल कुरुक्षेत्र ही था।

प्रक्षेप-परिहार

पुराणों में अन्य विद्वानों द्वारा मिलाए जाने वाले श्लोकों के अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं। इसे ही प्रक्षेप कहते हैं। 'वामन पुराण' मूल रूप में विष्णु-प्रधान पुराण था। धीरे-धीरे इसमें बहुत से शिव सम्बन्धी श्लोकों का भी प्रक्षेप होता गया। इस समय इसे शैव पुराणों के वर्ग में रखा जाने लगा है जो प्रक्षेप का ही परिणाम माना जाना चाहिए। इसके साथ ही मूल 'वामनपुराण' में दस हज़ार श्लोक थे। वर्तमान समय में उपलब्ध वामनपुराण में मात्र ६००० श्लोक हैं। ४००० श्लोक इसमें से विलुप्त हो गये हैं। अतः यह माना जा सकता है कि 'वामनपुराण' में प्रक्षेप और परिहार, दोनों होते रहे हैं। वर्तमान पुराण इसी प्रक्रिया का परिणाम है। 'नारदपुराण' में कहा गया है कि 'वामनपुराण' के दो भाग हैं। इसके उत्तर भाग को 'बृहद्वामन' कहा गया है। बृहद् वामन में चार संहिताएँ थीं—माहेश्वरी, भागवती, सौरी तथा गाणेश्वरी। इनमें से प्रत्येक संहिता में एक-एक हज़ार श्लोक थे।

इत्येष पूर्व भागोऽस्य पुराणस्य तवोदितः।
शृण्वतोऽस्योत्तरं भागं बृहद्वामन सञ्ज्ञकम्॥
माहेश्वरी भागवती सौरी गाणेश्वरी तथा।
चतस्रः संहिताश्चात्त पृथक् साहस्र संख्या।।
माहेश्वर्यां तु कृष्णस्य तद्भक्तानां च कीर्तनम्।
भागवत्यां जगत्मातुरवतार केथाद्भ्रता।।
सौर्यां सूर्यस्य महिमा गदितः पापनाशनः।
गाणेश्वर्यां गणेशस्य चरितं च महेशितुः॥
इत्येतद्वामनं नाम पुराणं सुविचित्र कम्।
पुल्स्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मने॥

(अ. १०५/१३१७)

अर्थात् पुराण का यह पूर्व भाग तुम्हें बतला दिया। इसके बृहद्वामन नामक उत्तर भाग में माहेश्वरी, भागवती, सौरी और गाणेश्वरी नामक चार संहिताएँ हैं। प्रत्येक संहिता एक सहस्र श्लोकों से पूर्ण है। माहेश्वरी में कृष्ण तथा उसके भक्तों का कीर्तन, भागवती में जगन्माता की अवतारकथा, सौरी में पापनाशन सूर्य-माहात्म्य और गाणेश्वरी में महेश-गणेश का चरित्र चित्रित हुआ है। पहले इस विचित्र वामनपुराण को पुलस्त्य ने नारद को बतलाया। फिर महात्मा नारद से सुमाहात्मा व्यास ने प्राप्त किया। इस समय 'वृहद्वामन' उपलब्ध न होने से ये चार सहस्र श्लोक लुप्त हो गये हैं और वर्तमान में लगभग ६००० श्लोकों वाला 'वामनपुराण' ही उपलब्ध है। 'वामनपुराण' में परिहार का यह स्पष्ट उदाहरण है।

'वामनपुराण' के काशिराज संस्करण में २३वें और २४वें अध्याय के मध्य में २८ अध्यायों का एक पृथक् प्रकरण 'सरोमाहात्म्य' नाम से मुद्रित है। वेंकटेश्वर प्रेस से मुद्रित 'वामनपुराण' में 'सरोमाहात्म्य' नामक यह अंश नहीं है। कई हस्त-लेखों में यह 'सरोमाहात्म्य' उपलब्ध है। यह 'वामनपुराण' में प्रक्षेप का स्पष्ट प्रमाण है। अतः यह कहना उचित होगा कि 'वामनपुराण' में भी प्रक्षेप तथा परिहार की प्रक्रिया स्पष्ट है।

समन्वयात्मकता

पुराणों के विषय में यह भ्रान्त धारणा रही है कि इनमें साम्प्रदायिक विद्वेष की भावना का वर्णन हुआ है। एक सम्प्रदाय को श्रेष्ठ बता कर दूसरे को हीन

बताया गया है, आदि। हम अपने अध्ययन के आधार पर यह मानते हैं कि उक्त मत मात्र दुष्प्रचार है। एक अपवाद को छोड़कर शेष सभी पुराणों में साम्प्रदायिक सद्भाव या सर्वधर्म समन्वय का सुन्दर एवं प्रशंसनीय वर्णन हुआ है। 'वामनपुराण' भी इसका अपवाद नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन द्रष्टव्य है—'विष्णुपरक होने के कारण इसमें विष्णु के भिन्न-भिन्न अवतारों का वर्णन होना स्वाभाविक है, परन्तु वामनावतार का वर्णन विशेष रूप से दिया हुआ है। इस पुराण में शिव, शिव का माहात्म्य, शैव तीर्थ, उमा-शिव-विवाह, गणेश की उत्पत्ति और कीर्तिकेय-चरित आदि विषयों का वर्णन मिलता है जिससे पता चलता है कि इसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं है।' (पुराण-विमर्श, पृ. १५८) वस्तुतः इस पुराण में विष्णु भगवान् के स्वरूप, विष्णु-पूजा के विधि-विधान, विष्णु भक्ति, विष्णु-मन्दिर के निर्माण विष्णु पूजा सम्बन्धी मुख्य-मुख्य तीर्थों के वर्णन तथा लक्ष्मी के विभिन्न रूपों की चर्चा से जहाँ एक ओर यह वैष्णव भावनाओं से ओतप्रोत पुराण सिद्ध होता है वहाँ दूसरी ओर इस पुराण में शैव धर्म, शिव के भिन्न रूप, शिव का विस्तृत चरित्र, चार शैव सम्प्रदायों, शंकर-पूजा के विधि-विधान का भी उतना ही विस्तृत वर्णन हुआ है। इतनी ही शक्ति के स्वरूप शक्ति पूजा के विभिन्न तीर्थों और देवी के भिन्न-भिन्न रूपों के वर्णन से यह पुराण शाक्त धर्म के वर्णन से भी परिपूर्ण है। इसके साथ ही इसमें सूर्य-पूजा का भी वर्णन हुआ है। इस आधार पर स्पष्ट ही यह माना जा सकता है कि भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता-साम्प्रदायिक सहिष्णुता का 'वामनपुराण' में प्रभावशाली रूप में प्रतिपादन हुआ है।

निष्कर्ष

- पुराणों के क्रम में 'वामनपुराण' चौदहवाँ पुराण है।
- इसके वक्ता-श्रोता पुलस्त्य ऋषि तथा नारदजी हैं।
- वामन पुराण की श्लोक-संख्या दस हज़ार बताई गई है, किन्तु वर्तमान में यह संख्या ६००० है। शेष ४००० श्लोक लुप्त हो गये हैं।
- विष्णु भगवान् के अवतार वामन भगवान् की कथा इस पुराण में विशेष

रूप से वर्णित है। यही इसके नामकरण का आधार है।

- इसे नियम से सात्त्विक पुराण माना जाना चाहिए, किन्तु शिव सम्बन्धी विवरण भी इसमें दिए गए हैं, शक्ति पूजा का भी इसमें वर्णन हुआ है। अत: इसे 'राजस' पुराणों के वर्ग में रखा गया है।
- 'वामनपुराण' का रचना-काल ६००-९०० ई. के मध्य माना जा सकता है।
- इस पुराण पर कालिदास की रचनाओं का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है।
- वामनपुराण का साहित्यिक सौन्दर्य, इसमें वर्णित सौन्दर्य चेतना अत्यन्त मुग्धकारी हैं।
- प्रकृति की रमणीयता का चित्रण 'वामनपुराण' में सविशेष उल्लेखनीय है।
- लघु आकार का होते हुए भी इसे 'महापुराण' माना जाता है।
- कुरुक्षेत्र में सरस्वती-तट पर इस पुराण की रचना हुई थी, ऐसी विद्वानों की मान्यता है।
- प्रारम्भ में यह वैष्णवपुराण था, तत्पश्चात् इसमें शिव सम्बन्धी कथाएँ भी जोड़ी गईं जो यह सूचित करती हैं कि इस पुराण में पर्याप्त प्रक्षेप हुआ है। मूल 'वामनपुराण' में दस हज़ार श्लोक थे, वर्तमान प्रकाशित-अप्रकाशित प्रतियों में मात्र ६००० श्लोक हैं जो यह सूचित करते हैं कि प्रक्षेप के साथ-साथ इस पुराण में परिहार भी हुआ है।
- साम्प्रदायिक संकीर्णता का इस पुराण में सर्वथा अभाव है। विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, सभी की पूजा-उपासना का वर्णन इस पुराण में हुआ है जो धार्मिक समन्वय का स्पष्ट प्रमाण है।

●●

२ धर्म : सदाचार-वर्णन

'वामनपुराण' में बहुत ही मार्मिक ढंग से सदाचार-रूपी वृक्ष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति सदाचार से ही सम्भव है—

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शांखा पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः।
असौ सदाचार तरुः सुकेशिन् संसेवितो येन सं पुण्य योक्ता।।

(अ. १४/१९)

हे सुकेशिन्! सदाचार का मूल धर्म है, धन इसकी शाखा है, काम (मनोरथ) इसका पुष्प है एवं मोक्ष इसका फल है। ऐसे सदाचार-रूपी वृक्ष का जो सेवन करता है, वह पुण्य-भोगी बन जाता है।

धर्म के सामान्य लक्षणों के 'वामनपुराण' में दो बार वर्णन हुआ है। एक स्थान पर धर्म के दस अंग बताये गये हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिदंभः शमः।
अक्रापर्ण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचरः॥ (अ. १४/१)

हे राक्षस श्रेष्ठ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) दान, क्षमा, दम (इन्द्रिय-निग्रह) शम (वैराग्य भाव, निर्वेद भाव) अकार्णण्य, शौच एवं तप धर्म, ये दस अंग हैं। 'वामनपुराण' के १५वें अध्याय में सुकेशी द्वारा दैत्यों के लिए धर्म के तेरह लक्षण या अंग बताये गये हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचर्मिन्द्रिय संयमः।
दानं दयाच शान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता।।
शुभा सत्या च मधुरा वाङ् नित्यं सत्क्रियाशति।
सदाचार निषेवित्वं परलोक प्रदायकाः॥ (अ. १५/२-३)

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शुचिता, इन्द्रिय-निग्रह, दान, दया, क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहंकार न करना, प्रिय, सत्य और मधुर वाणी बोलना, सदा सत्कार्यों में अनुराग रखना एवं सदाचार का पालन करना, ये सब धर्म परलोकमें सुख देने वाले हैं।

'वामन पुराण' में प्रतिदिन के पालन करने योग्य नियमों, प्रतिदिन के आचरण की विस्तृत चर्चा हुई है। इस पुराण के अनुसार हम यहाँ 'आचरण संहिता' का वर्णन करते हैं। देवता, गौ, ब्राह्मण, और अग्नि के मार्ग, राजपथ (सड़क) चौराहे, गोशाला में तथा पूर्व और पश्चिम में मुख करके मल-त्याग नहीं करना चाहिए। मल-त्याग के पश्चात् सभी अंगों को स्वच्छ करना चाहिए। तत्पश्चात् मुख-प्रक्षालन करके आचमन करने के उपरान्त केश-संशोधन, दन्तधावन, दर्पण-दर्शन तथा संध्योपासना करनी चाहिए। शिर: स्नान (सिर से पैर तक स्नान) अथवा अर्द्धस्नान करके पितरों एवं देवताओं का जल से पूजन करके हवन एवं माँगलिक वस्तुओं का स्पर्श करना चाहिए। इन प्रात: कृत्यों के साथ-साथ मनुष्य को देश के अनुसार, कुल की परम्परा के अनुसार तथा गोत्र के अनुसार धर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। कुल एवं गोत्र धर्म के अनुसार ही अर्थ की प्राप्ति करनी चाहिए। मनुष्य को असत्य भाषण कभी नहीं करना चाहिए। वेदों-शास्त्रों के विरुद्ध वचन भी कभी नहीं बोलने चाहिएं। भाषण में निष्ठुरता का सर्वथा त्याग करना चाहिए। बुरे लोगों का संग कभी नहीं करना चाहिए और न ही धर्म-विरुद्ध कार्य करना चाहिए। सन्ध्या-वेला में एवं दिन के समय सहवास नहीं करना चाहिए। पर-स्त्री से सदा दूर रहना चाहिए। रजस्वला स्त्री से भी रति कर्म वर्जित माना गया है। गृहस्थ व्यक्ति को व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान, व्यर्थ पशु-धन तथा व्यर्थ दार-परिग्रह नहीं करना चाहिए। ये सभी कष्टकारी हो सकते हैं। पर-धन नरक देने वाला और पर-स्त्री मृत्यु का कारण होती है—**परस्वं नरकायैव परदारास्च मृत्यवे।**(अ.१४/४४)। परस्त्री को नग्न-रूप में देखना तथा चोरों से बातचीत करना सर्वथा वर्जित हैं। अपनी बहिन तथा परस्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए। माता तथा कन्या के साथ भी एक आसन पर बैठना अनुचित कहा गया है। नग्न होकर स्नान और शयन नहीं करना चाहिए। कुछ विशेष तिथियों में कुछ विशेष काम वर्जित बताने के उपरान्त यह बताया गया है कि शेष दिनों में सभी कार्य सदैव कर्तव्य है—'**शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात्।**'(अ. १४/४९) कतिपय विशेष नक्षत्रों में भी कई काम निषिद्ध माने गये हैं।

ग्रहोपराग (ग्रहण के समय) और स्वजन की मृत्यु तथा जन्म-नक्षत्र में चन्द्रमा के रहने के अतिरिक्त समय में रात्रि में बिना विशेष कारण स्नान नहीं करना चाहिए। दक्षिण एवं पश्चिम की ओर मुँह करके भोजन नहीं करना चाहिए। यथासम्भव दूसरे द्वारा व्यवहार में लाये हुए वस्त्रों को धारण नहीं करना चाहिए। मनुष्य को किस प्रकार के राज्य में रहना अथवा नहीं रहना चाहिए, इस विषय में 'वामनपुराण' का मत है—

वसेच्च देशेषु सुराजकेषु सुसंहितेष्वेव जनेषु नित्यम्।
अक्रोधना न्याय परा अमत्सरा कृषीवला ह्योषधमश्च मत्र॥
श्वापस्तु बैधो धनिकाश्च यत्र सच्छ्रोत्रियस्तत्र वसेत नित्यम्।

(अ. १४/५५/५६)

अर्थात् मनुष्य को वहाँ रहना चाहिए जहाँ का राज़ा धर्मात्मा हो एवं जनवर्ग में समता हो। लोग क्रोधी न हों, न्यायी हों। परस्पर ईर्ष्या न हो। खेती करने वाले किसान और औषधियाँ हों (जहाँ चतुर वैद्य, धनी-मानी दानी, श्रेष्ठ श्रोत्रिय विद्वान् हों, वहीं निवास करना चाहिए। इसके विपरीत जिस देश का राजा प्रजा को मात्र दण्ड ही देना चाहता हो, उत्सवों में जन-समाज में नित्य किसी-न-किसी प्रकार वैर-विद्वेष हो एवं लड़ाई-झगड़ा करने की (जीतने की) लालसा हो, निर्बल मनुष्य को ऐसे स्थान पर नहीं रहना चाहिए—

ने तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान् सदानृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः।
जनोऽपि नित्योत्सव बद्धवैरः सदाजिजीषुश्च निशाचरेन्द्र॥

(अ. १४/५७)

मनुष्यों के खान-पान-भोजन सम्बन्धी नियमों की चर्चा करते हुए 'वामनपुराण' में कहा गया है कि तैल, घी आदि स्निग्ध पदार्थों से पकाया गया अन्न, बासी एवं बहुत पहले के बने रहने पर भी भोज्य (खाने योग्य) तथा सूखे भुने हुए चावल एवं दूध के विकार-दही, घी आदि भी बासी होने पर भी खाने योग्य माने गये हैं। इसी प्रकार मनु ने चने, अरहर, मसूर आदि भुनी हुए दालों को भी अधिक काल तक भोजन के योग्य बतलाया है। 'वामनपुराण' में द्रव्यों की 'शुद्धि' का भी इसी अध्याय में वर्णन किया गया है।

मणि, रत्न, प्रवाल (मूँगा) मोती, पत्थर, लकड़ी के बने बर्तन, तृण मूल, औषधियाँ, सूप (दाल) धान्य, मृगचर्म, सिले हुए वस्त्र एवं वृक्षों की छाल, इन सबकी शुद्धि जल से होती है। तैल, घृत आदि से मलिन हुए वस्त्रों की शुद्धि उष्ण जल तथा तिलकल्क (खली) से एवं कपास के वस्त्रों की शुद्धि भस्म से (कोयले आदि की राख से) होती है। हाथी के दाँत, हड्डी और सींग की बनी चीज़ों की शुद्धि तराशने से होती है। मिट्टी के बर्तन पुनः आग में जलाने से शुद्ध होते हैं। भिक्षान्न, कारीगरों का हाथ, विक्रेय वस्तु, स्त्री मुख, अज्ञात वस्तु ग्राम के मध्य मार्ग या चौराहे से लाई जाने वाली वस्तु तथा नौकरों द्वारा निर्मित वस्तुएँ पवित्र मानी गई हैं। इसी प्रकार अन्य बहुत-सी वस्तुओं का उल्लेख किया गया है जिन्हें सदा शुद्ध माना गया है। शौचाचार की दृष्टि से यह शुद्धाशुद्ध विधान किया गया है। अपवित्र वस्तु से मिले पदार्थ जल और मिट्टी से धोने से, दुर्गन्ध दूर कर देने से शुद्ध होते हैं। यदि एक द्रोण (ढाई सेर से अधिक) पके अन्न का अपवित्र वस्तु से सम्पर्क हो जाए तो उसके ऊपर का अंश निकाल कर फेंक देना चाहिए और शेष पर जल छिड़क देना चाहिए। इससे उसकी शुद्धि हो जाती है। मनुष्य के खाने-पीने, ओढ़ने आदि में शुचिता बनी रहे तभी उसका आचरण भी शुद्ध होता है और शुद्ध आचरण ही सदाचार एवं धर्म कहलाता है। अज्ञात रूप से दूषित अन्न खा लेने पर तीन रात्रि तक उपवास करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है, किन्तु जानबूझ कर दूषित अन्न खाने पर शुद्धि नहीं होती। मन की शुद्धि के लिए शरीर की शुद्धि को आवश्यक बताया गया है। इसी सन्दर्भ में कहा गया है कि रजस्वला स्त्री, कुत्ता, नग्न (दिगम्बर साधु) प्रसूता स्त्री, चाण्डाल और शववाहकों का स्पर्श हो जाने पर अपवित्र हुए व्यक्ति को पवित्र होने के लिए स्नान करना चाहिए।

आचरण-व्यवहार की दृष्टि में 'वामनपुराण' में कहा गया है कि मनुष्य को सदा 'त्रयी' अर्थात् ऋक्, यजुः और सामवेद का अध्ययन करना चाहिए। धर्मपूर्वक धनार्जन एवं यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिए। मनुष्य को जिस कार्य को करने से आत्म-ग्लानि न हो, स्वयं से घृणा उत्पन्न न हो और जो कार्य बड़े लोगों से छिपाने योग्य न हों, ऐसा कार्य निःशंक होकर करना चाहिए।

यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस।
तत् कर्त्तव्यम शंकेन यन्न गोप्यं महाजने॥ (१४/११०)

इस प्रकार के कर्म करनेवाले गृहस्थ को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सबकी प्राप्ति हो जाती है और वह व्यक्ति लोक और परलोक में कल्याण का भागी होता है। गृहस्थ को श्राद्ध एवं पितृतर्पण भी अवश्य करना चाहिए।

गृहस्थ व्यक्तियों के आचरण का निर्देश करने के पश्चात् वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम के कर्तव्यों का भी वर्णन 'वामनपुराण' में किया गया है। पुत्र की सन्तान को देखकर तथा अपने बुढ़ापे में मनुष्य को आत्मा की शुद्धि के लिए वानप्रस्थ-आश्रम को स्वीकार करना चाहिए। वहाँ अरण्य में उत्पन्न मूल-फल आदि से अपना जीवनयापन करना चाहिए तथा तप द्वारा शरीर-शोषण करना चाहिए। इस आश्रम में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन, पितर, देवता तथा अतिथियों की पूजा करें। नित्य हवन, त्रिकाल स्नान, जटा और वल्कल का धारण तथा वन्य फलों से निकाले रस का सेवन करें। यही वानप्रस्थ आश्रम के नियम-विधान हैं।

संन्यासियों के धर्म का वर्णन करते हुए 'वामनपुराण' में कहा गया है कि संन्यासी को सभी प्रकार की आशक्तियों का त्याग, ब्रह्मचर्य, अहंकार का त्याग, एक स्थान पर अधिक समय तक न रहना, उद्योग का अभाव, भिक्षान्न-भोजन, क्रोध का त्याग तथा आत्म ज्ञान की इच्छा और आत्मावबोध, यही संन्यासी के कर्तव्य हैं, धर्म हैं। आश्रमों में साथ-साथ वर्णों के धर्मों की चर्चा भी 'वामनपुराण' में संक्षेप में हुई है। क्षत्रिय गृहस्थाश्रम, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ को स्वीकार कर सकता है। वैश्यों के लिए गृहस्थ एवं वानप्रस्थ, इन दो आश्रमों का ही विधान है। शूद्रों के लिए एकमात्र गृहस्थाश्रम का ही नियम है। अन्त में कहा गया है कि मनुष्य न तो धर्म का त्याग करे और न अपने वंश की हानि होने दे। जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग करता है उस पर भगवान् सूर्य क्रोध करते हैं—

यः संत्यजेच्चापि निजं हि धर्मं
तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु। (अ. १४/१२३)

●●

३ नरक-वर्णन

नरक का वर्णन अधिकतर पुराणों में हुआ है। लोगों को पाप-कर्मों से दूर रखने तथा श्रेष्ठ कर्मों की ओर अग्रसर करने के लिए नरकों तथा नरक-यातनाओं का वर्णन किया गया है। कौन-सा पाप करने से मनुष्य को किस नरक में जाना पड़ता है तथा उस नरक में कौन-कौन-सी यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, यह बताकर, नरक-भय के माध्यम से लोगों को श्रेष्ठ कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है। 'वामनपुराण' में बाईस नरकों का नामोल्लेख हुआ है। ये नरक हैं—रौरव नरक, महारौरव नरक, तामिस्त्रनरक, अन्धतामिस्त्र नरक, काल चक्र नरक, अप्रतिष्ठ नरक, घटीयन्त्र, असिपत्रवन नरक, तप्तकुम्भ नरक, कूटशाल्यलि नरक, करपत्र नरक, श्वान भोजन नरक, संदंश नरक, लोहपिण्ड नरक, करम्भसिकता नरक, भयकर क्षार नदी नरक, कृमि भोजन नरक, वैतरणी नदी नरक, शोपित पूय भोजन नरक, क्षुराग्र धार नरक, निशित चक्रक नरक तथा संशोषण नरक।

उक्त बाईस नरकों में से पाँच नरकों के विस्तार-क्षेत्र का भी वर्णन 'वामनपुराण' में किया गया है। रौरव नरक दो हज़ार योजन तक विस्तृत है तथा इसमें अंगारे ज्वलित रहते हैं। महारौरव नरक का विस्तार चार हज़ार योजन बताया गया है। तामिस्त्र नरक का विस्तार आठ हज़ार योजन है और अन्धतामिस्त्र नरक सोलह हज़ार योजन में विस्तृत है। असिपत्रवन नरक को बहत्तर हज़ार योजन विस्तृत बताया गया है। 'वामनपुराण' में नरकों का वर्णन दो पृथक्-पृथक् अध्यायों में किया गया है। इसके बारहवें अध्याय में विशेष रूप से नरक की यातनाएँ भोगने वाले कर्मों का वर्णन किया गया है। इसी अध्याय के आधार पर हम यहाँ संक्षिप्त-सी चर्चा कर रहे हैं।

माता-पिता एवं गुरु की अवज्ञा करने वाले उद्दण्ड व्यक्ति को पूय विष्ठा एवं मूत्र से परिपूर्ण अप्रतिष्ठ नामक नरक की यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, जहाँ उन्हें मुख नीचे करके लटका दिया जाता है। एक ही पंक्ति में बैठे हुए लोगों को जो समान रूप से भोजन नहीं कराते वे विड़भोजन नामक नरक में जाते हैं। जो लोग देवता, अतिथि, भृत्य, अभ्यागत, बालक, पिता, अग्नि एवं माता

को बिना खिलाये स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे क्षुधार्त होकर, दूषित रक्त एवं पीव का भक्षण करते हैं। एक साथ चलने वाले किसी भोजन की कामना रखने वाले व्यक्ति को देखकर भी जो भोजन नहीं कराते, ऐसे बिना बाँटे भोजन करने वाले श्लोषम भोजन नामक नरक में जाते हैं। दैव या पैतृक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर किसी अन्य घर में भोजन कर लेने वाले मूढ़ को तीखी चोंच वाले बड़े-बड़े पक्षी दो टुकड़े कर डालते हैं। दुष्ट बुद्धि वाला जो व्यक्ति साधुओं की निन्दा करता है उसकी जीभ को वज्र के समान चोंच और नाखून वाले कौए खींचते हैं। शरण में आये हुए व्यक्ति का त्याग करने वाले तथा कारागार की रक्षा करने वाले व्यक्ति यन्त्रपीड़ नामक नरक में गिरते हैं। धरोहर का अपहरण करने वाले पापियों को ज़जीरों से बाँध कर वृश्चकाशन नामक नरक में डाला जाता है। उपाध्याय को स्वयं की अपेक्षा नीचे आसन पर बैठा कर अध्ययन करने वाले नीच ब्राह्मण एवं उनके अध्यापकों को सिर पर शिलाएँ ढोनी पड़ती हैं। स्पष्ट है कि जीवन के विभिन्न एवं विविध क्षेत्रों में किये जाने वाले पापों के कर्म-फल के रूप में भिन्न-भिन्न नरकों की यातनाओं के विधान द्वारा पुराणकार लोगों का पापों से बचने की प्रेरणा दे रहे हैं। ऐसे कितने ही अन्य कुकर्मों-दुष्कर्मों के लिए भी नरक की यातनाएँ भोगने का वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है।

इसी सन्दर्भ में कहा गया है कि जो लोग सार्वजनिक उपयोग के कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि जलस्रोतों और सभाग्रह आदि को नष्ट करते हैं या दूषित करते है, उनकी देह का चमड़ा उतार कर उन्हें नरक में डाला जाता है जिससे वे निरन्तर विलाप करते रहते हैं। जो व्यक्ति सार्वजनिक उपयोग के स्थानों को तथा पदार्थों को शौच आदि से गन्दा करते हैं, उनकी आँतों को कौए खींच ले जाते हैं। जो पापी कन्या को भ्रष्ट करते हैं, उसके गर्भ का स्राव करते हैं उनको नरक में चीटियों तथा कीड़ों से भक्षण कराया जाता है। जो लोग झूठ को सच बना कर बोलते हैं, न्यायालय में झूठी गवाही देते हैं वे महारौरव नरक में दस हज़ार वर्ष तक पड़े रहते हैं।पर्व में मैथुन करनेवाले और परस्त्री से प्रेम करने वाले पापी को शाल्मलि नामक नरक में डाला जाता है जहाँ जलती हुए कीलों से उसके शरीर को छेदा जाता है। चुग़लखोर और घूसखोर व्यक्तियों को वृक्‌भक्ष नामक नरक में डाला जाता है। सुवर्ण चोर, ब्रह्महत्या का दोषी, मद्यप, गुरुपत्नीगामी, गाय तथा भूमि की चोरी करने वाले, स्त्री तथा बालक

को मारने वाले, गाय, सोम तथा वेद का विक्रय करने वाले व्यक्तियों को महारौरव नामक नरक में रहना पड़ता है। दुर्भिक्ष एवं विप्लव के समय पुत्र, नौकर, स्त्री तथा भाई-बन्धु को छोड़कर जो केवल अपना ही पेट भरते हैं, उन्हें श्वभोजन नामक नरक में रहना पड़ता है।

'वामनपुराण' में पापों की एक अन्य सूची भी प्रस्तुत की गई है और यह बताया गया है कि कौन-सा दुष्कर्म करने पर कौन-से नरक की प्राप्ति होती है। अन्तर केवल इतना है कि नरकों के नाम न देकर नरक संख्या दे दी गई है। उदाहरणार्थ 'वामनपुराण' में बताया गया है कि परस्त्रीगमन, पापियों के साथ रहना और सब प्राणियों के प्रति कठोर व्यवहार करने वाला प्रथम नरक में जाता है। फलों की चोरी, व्यर्थ घूमना, वृक्षों को काटना दूसरे नरक का कारण बनता है। अवध्य का वध करना, त्यागी हुई वस्तु को पुनः ग्रहण करना, रुपये-पैसे के लिए आपस में लड़ाई करना, तीसरा नरक कहा गया है। सभी प्राणियों को भयभीत करना, संसार की विभूति का विनाश करना, स्वधर्म से च्युत होना चौथा नरक कहा जाता है। धर्म, अर्थ, काम की हानि मोक्ष का नाश, मनुष्यों में भेदभाव उत्पन्न करना चौदहवाँ नरक कहा गया हैं। आलस्य, अधिक क्रोध, सभी के प्रति आततायी[१] का व्यवहार करना, घर में आग लगाना सोलहवाँ नरक कहा गया है। दूसरे की स्त्री की इच्छा करना, सत्य के प्रति द्वेष रखना, निन्दनीय एवं उद्दण्डव्यवहार सत्रहवाँ नरक कहा गया है। इस प्रकार 'वामनपुराण' में कुकर्म से बचने की प्रेरणा देने के लिए नरक-भय दिखाया गया है जो अन्य पुराणों की शैली के भी अनुरूप है।

पुराणों में नरक-वर्णन प्रसंग उन व्यक्तियों के लिए चेतावनी के समान है जो म्वार्थ के लिए समाज तथा अन्य व्यक्तियों का अहित करते हैं, अथवा जो व्यक्ति स्वभाव से ही दुष्ट हैं और दूसरों का अहित करना उन्हें प्रिय लगता है। नरकों के वर्णन द्वारा पुराणकार हमें यह बताना चाहते हैं कि हम बुरे कर्मों से बचें और श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करें क्योंकि दुराचार करने वाले को उसका प्रतिफल, उसका दण्ड अवश्य किसी-न-किसी रूप में मिलेगा ही। कर्मफल का सिद्धान्त अचल एवं अटल है। अतः मनुष्य को कुकर्म से बचकर सुकर्म की ओर अग्रसर होना चाहिए, यही 'नरक वर्णन' का उद्देश्य है।

---

१. अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्र दारापहारी च षडेते आततायिनः॥

४ व्रत-वर्णन

पुराणों में व्रतों का वर्णन अत्यन्त विस्तार से हुआ है। कुछ पुराणों का तो मुख्य प्रतिपाद्य ही व्रत एवं तीर्थ-महिमा है। वस्तुत: भारतीय धर्म साधना में व्रतों की बहुत महिमा है। भक्तों-साधकों को यह विश्वास होता है कि देवों ने कुछ नियम निश्चित किये हैं, जिनका पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। संकल्पपूर्वक किसी नियम का पालन करना ही व्रत कहलाता है। 'मानस: संकल्पो व्रतमुच्यते।' शास्त्रों में वर्णित नियमों को दृढ़ निश्चय से पालन करना व्रत होता है। 'वामनपुराण' में व्रतों की प्रमुखता तो नहीं है, किन्तु कुछ विशेष व्रतों का वर्णन इस पुराण में हुआ है। अखण्ड द्वादशी व्रत, अशून्यशयन द्वितीया-व्रत, अष्टमी व्रत, चान्द्रायण व्रत, तप्त कृच्छ्र व्रत, नक्षत्र पुरुष व्रत, श्रवण द्वादशी व्रत, 'वामनपुराण' में केवल इन्हीं व्रतों का ही वर्णन किया गया है। इसमें से अष्टमी व्रत का वर्णन विस्तारपूर्वक हुआ है, शेष व्रतों की चर्चा संक्षेप में हुई है। हम यहाँ संक्षेप में 'वामनपुराण' में वर्णित व्रतों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

अखण्ड द्वादशी-व्रत

यह विष्णु भगवान् का व्रत है। एकादशी को उपवास रहकर द्वादशी को एक वस्तु का भोजन करना इस व्रत का मुख्य नियम है। इस व्रत में द्वादशी के दिन श्वेत सरसों तथा तिल मिश्रित जल से स्नान किया जाता है और उसी का उबटन लगाया जाता है। भगवान् विष्णु को घृत से स्नान कराया जाता है और घी से हवन करके अपनी सामर्थ्य के अनुसार दान किया जाता है। भगवान् केशव की पुष्पों द्वारा पूजा करके उन्हें धूप से धूपित किया करते हैं। सुवर्ण, रत्न और वस्त्र द्वारा विष्णु भगवान् की पूजा करके मिष्ठान्न का नैवेद्य अर्पित किया जाता है। इस व्रत का अनुष्ठान करने से निश्चित रूप से देवता प्रसन्न होते हैं और व्रत-कर्ता को धर्म, अर्थ एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह व्रत पूरे वर्ष में किया जाता है इसलिए इसे 'अखण्ड द्वादशी' कहा गया है।

अशून्य शयन द्वितीया व्रत

विश्व कर्मा की शयन तिथि श्रावण कृष्णा द्वितीया है। इस तिथि को अशून्य शयना द्वितीय कहते हैं। गृहस्थ धर्म की सफलता इस व्रत का उद्देश्य है, जो निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है—'हे त्रिविक्रम, हे अनन्त, हे जगन्निवास, जिस प्रकार आप लक्ष्मी से पृथक् नहीं होते, उसी प्रकार आपकी कृपा से हम लोगों का शयन कभी (स्त्री से) शून्य न हो। इस व्रत का संकेत 'वामनपुराण' में दो बार मिलता है। इस तिथि को पर्यंक पर सोये हुए श्री वत्स चिन्ह से अंकित भगवान् विष्णु का, चतुर्भुज हरि का गन्ध पुष्पादि से अर्चन किया जाता है। फल का नैवेद्य अर्पित किया जाता है।

अष्टमी व्रत

इस व्रत का सम्बन्ध भगवान् शिव की पूजा से है। प्रत्येक मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि शिवपूजन के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण मानी गई है। अत: 'वामन पुराण' में भाद्र मास की कृष्ण अष्टमी से लेकर श्रावण कृष्ण अष्टमी तक बारह अष्टमी व्रतों की चर्चा की गई है। इस व्रत में पूजा के विधि-विधान तथा नियमों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। भाद्र कृष्ण अष्टमी, आश्विन कृष्ण अष्टमी, कार्तिक कृष्ण अष्टमी, मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमी, पौष कृष्ण अष्टमी, माघ कृष्ण अष्टमी, फाल्गुन कृष्ण अष्टमी, चैत्र कृष्ण अष्टमी, वैशाख कृष्ण अष्टमी, ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ कृष्ण अष्टमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, इन बारह व्रतों का अनुष्ठान की विधि का वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है। हम यहाँ मात्र दो अष्टमियों के विधि-विधान की चर्चा कर रहे हैं।

फाल्गुन कृष्ण अष्टमी

इस तिथि को उपवास करके दूसरे दिन पंचगव्य से स्नान कराया जाता है और कुन्द-पुष्प द्वारा पूजन किया जाता है। चन्दन का धूप और ताँबे के पात्र में घृत सहित गुड़ादेन (गुड़ में बना भात) का नैवेद्य अर्पित किया जाता है। 'रुद्र' शब्द का उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को नैवेद्य-सहित दक्षिणा देनी चाहिए तथा दो वस्त्र प्रदान करने चाहिएँ। इस व्रत के अनुष्ठान से व्रतकर्ता का मंगल होता है, उसके अभीष्ट की सिद्धि होती है।

वैशाख कृष्ण अष्टमी

इस तिथि को उपवास करके दूसरे दिन सुगन्धित पुष्पों के जल से स्नान करके आम्र मंजरियों से भगवान् शिव की पूजा की जाती है। सर्ज वृक्ष के गोंद का धूप, फल सहित घृत का नैवेध अर्पण किया जाता है। 'कालाध्न' नाम से शिव का जप करना चाहिए। उपवीत एवं अन्नादि के साथ जलकुम्भ की दक्षिणा ब्राह्मण को देनी चाहिए।

चान्द्रायण व्रत

जो व्यक्ति बन्धु-बान्धवों और साधुओं से एवं ब्राह्मणों से परित्यक्त व्यक्ति के यहाँ तथा कुण्ड[१] के यहाँ भोजन करता है उसे पातक लगता है। उससे प्रायश्चित्त करने के लिए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। 'मनुस्मृति' में चान्द्रायण व्रत चार प्रकार का बताया गया है—पिपीलिका मध्य, यवमध्य, यति चान्द्रायण और शिशु चान्द्रायण। इस व्रत के अनुष्ठान की भी 'मनुस्मृति' में विस्तृत चर्चा की गई है।

तप्तकृच्छ्र व्रत

'वामनपुराण' में इस व्रत का संकेत दो बार मिलता है। यह व्रत शरीर की शुद्धि के लिए किया जाता है। तीन दिन उष्ण जल का पान, फिर तीन दिन उष्ण दुग्ध का पान, तीन दिन उष्ण घृत का पान, फिर तीन दिन वायुभक्षण मात्र करना इस व्रत के अनुष्ठान की विधि है। जल आदि का परिमाण भी बताया गया है। जल द्वादश 'पल', दुग्ध आठ 'पल', घृत छः 'पल' की मात्रा में पान किया जाता है। जो लोग सम्पत्तिवान होते हुए भी दान नहीं करते, न ही स्वयं अच्छी तरह भोजन करते हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए इस व्रत का विधान किया गया है। 'वामनपुराण' के अनुसार इन्द्र आदि देवताओं ने भी इस व्रत का अनुष्ठान किया था तथा भगवान शंकर का दर्शन पाया था।

नक्षत्र पुरुष व्रत

'वामनपुराण' के उन्नीस श्लोकों[२] में विस्तार सहित इस व्रत की चर्चा की

---

१. पति के जीवित रहते हुए पुर पुरुष से उत्पन्न पुरुष।

२. श्लोक २-२१ (अ० ८०)

गई है। विष्णु भगवान् के नक्षत्रमय विग्रह का वर्णन करते हुए बताया गया है कि चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में चन्द्रमा के मूल नक्षत्र में रहने पर भगवान् के दोनों चरणों की पूजा की जाती है और नक्षत्र के वर्तमान रहने पर श्रेष्ठ ब्राह्मण को भोजन देना चाहिए। आश्वनी नक्षत्र में भगवान् के दोनों घुटनों की, पूर्वाषाढ़ तथा उत्तराषाढ़ में उरुद्वय की पूजा करनी चाहिए। कृत्तिका नक्षत्र में भगवान् के कटिदेश की, फाल्गुनी नक्षत्र में भगवान् के गुह्य प्रदेश की तथा रेवती नक्षत्र में भगवान् की दोनों कुक्षियों की पूजा का विधान है। इसी प्रकार भगवान् के अन्य किस अंग की पूजा किस नक्षत्र में करनी चाहिए इसकी चर्चा करते हुए पूजा के विधि-विधान का भी वर्णन किया गया है।

श्रवण द्वादशी व्रत

भाद्रपद की शुक्ला द्वादशी श्रवण नक्षत्र तथा बुधवार को होने पर विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। इस दिन श्रवण द्वादशी व्रत का विधान किया गया है। 'वामनपुराण' में दो बार इस व्रत का वर्णन हुआ है। यह व्रत बहुत ही पुण्यदायक तथा मंगलकारी बताया गया है। भाद्रपद की शुक्ला एकादशी को व्रत धारण करना चाहिए और छाता, जूता जल से परिपूर्ण पात्र, मिष्ठान्न, दधि एवं ओदन से पूर्ण मिट्टी का पात्र ब्राह्मण को देना चाहिए।

निष्कर्ष यह है कि 'वामनपुराण' में व्रतों का वर्णन किया गया है जिनके अनुष्ठान से मनुष्य का मंगल होता है, उसका कल्याण होता है, उसके मन में पवित्र भाव एवं शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं, यही पुराणों का लक्ष्य है।

●●

५ नियम-विधान

व्रत-नियम शब्द का प्रयोग धार्मिक जगत् में प्राय: 'समस्त-पद' के रूप में किया जाता है। पापों के प्रक्षालन, प्रायश्चित्त तथा पुण्यों के संचय के लिए व्रतों का अनुष्ठान किया जाता है। व्रतों का सम्बन्ध व्यक्ति की अपनी भावना से होता है, जबकि 'नियम' का सम्बन्ध समूचे समाज से है। नियमों के पालन से व्यक्ति का हित होता है और सारे समाज का भी मंगल होता है। नियमों के पालन में अनिवार्यता रहती है। समाज में कतिपय ऐसे कर्तव्य जिनका पालन अनिवार्य हो, नियम कहलाते हैं। धर्म और सदाचार में भी बहुत-से नियमों की गणना हो जाती है। 'वामनपुराण' में व्रतों के साथ-साथ 'कतिपय ऐसे नियमों' की भी चर्चा विस्तार से हुई है जिनका पालन व्यक्ति एवं समाज, दोनों के लिए हितकारी है। डॉ. (श्रीमती) मालती त्रिपाठी ने 'वामन पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन'[१] नामक अपने शोध ग्रंथ में 'वामन-पुराण' में वर्णित नियमों की चर्चा पर्याप्त विस्तार से की है। हम यहाँ डॉ. श्रीमती मालती त्रिपाठी के संकलन को ही प्रस्तुत कर रहे हैं।

रति-नियम—सन्ध्या एवं दिन के समय रति नहीं करनी चाहिए। सभी योनियों की परस्त्रियों में, गृहहीन पृथ्वी पर, रजस्वला स्त्री के साथ तथा जल में, सुरत-व्यापार वर्जित है।

व्यर्थ कर्तव्यों का नियम—गृहस्थ को व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान, व्यर्थ पशु-वध, व्यर्थ दार परिग्रह नहीं करना चाहिए। व्यर्थ घूमने से नित्यकर्म की हानि होती है। वृथा दान से धनक्षय होता है। वृथा पशु-वध करने वाला नरकप्रद पातक को प्राप्त करता हैं। व्यर्थ स्त्री-संग्रह से सन्तान की निन्द्यहानि, वर्ण संकर से भय तथा लोक में भी भय की प्राप्ति होती है।

परदारा-निषेध—उत्तम व्यक्ति परधन तथा पर-स्त्री पर मन न लगाएँ, परधन नरक कारक और परस्त्री मृत्यु का कारण होती है। परस्त्री को नग्नावस्था

१.यह शोध ग्रन्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित हुआ है।

में न देखे। तस्करों से सम्भाषण न करे। रजस्वला स्त्री को कभी न देखे, न उसका स्पर्श करे, और न उससे सम्भाषण करे। अपनी बहिन तथा परस्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए। उसी प्रकार अपनी माता तथा कन्या के साथ एक आसन पर न बैठे। नग्न होकर स्नान और शयन कभी न करें। नंगा होकर भ्रमण न करें। टूटे आसन और बर्तन को दूर से ही त्याग-देना चाहिए।

तिथि-नियम—नन्दा (प्रतिपदा, षष्ठी एकादशी) तिथियों में मालिश नहीं करनी चाहिए। रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) तिथियों में क्षौर कर्म (हजामत) नहीं करनी चाहिए। जया (तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी) तिथियों में मांस नहीं खाना चाहिए। पूर्णा (पंचमी, दशमी और पूर्णिमा) तिथियों में स्त्री का सम्पर्क नहीं करना चाहिए। भद्रा (द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी) तिथियों में सभी कार्य करने चाहिए। इस प्रकार इन तिथियों के नियम को ध्यान में रखते हुए गृहस्थ को सभी कार्य करने चाहिएँ।

वार-नियम—रविवार एवं मंगलवार को मालिश, शुक्रवार को क्षौर कर्म शनिवार को मांस तथा बुधवार को स्त्री-संग का वर्जन नितान्त ज़रूरी है। शेष दिनों में (सोमवार, गुरुवार) सभी कार्य सदैव करने चाहिएं।

नक्षत्र-नियम—नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। उनका भी नियम 'वामन पुराण' में विधिवत् दिया गया है। उन्हें पूर्ण-रूप से निभाना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षत्रों में तेल मालिश नहीं करनी चाहिए। विशाखा और अभिजित नक्षत्रों में क्षौर कर्म नहीं करना चाहिए। मूल, मृगशिरा और भाद्रपदाओं में मांस नहीं खाना चाहिए। मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तराओं (उत्तरफाल्गुन, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्रपदा) में स्त्री-सहवास नहीं करना चाहिए।

दिशा-नियम—दिशाएँ चार प्रकार की होती हैं—पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। उसका नियम इस प्रकार है—उत्तर और पश्चिम की ओर सिर करके शयन करना सदा वर्जनीय है। दक्षिण और पश्चिम की ओर मुख करके भोजन कभी नहीं करना चाहिए। देव-मन्दिर, चैत्यतरु (प्रशस्त वृक्ष), चतुष्पथ, अपने से अधिक विद्वान् तथा गुरु की प्रदक्षिण करनी चाहिए। दूसरे के द्वारा प्रयोग में लाई गई माला, अन्न और वस्त्र का व्यवहार नहीं करना चाहिए।

स्नान-नियम—नित्य शिर के ऊपर से स्नान करना चाहिए। ग्रहण के समय और स्वजन की मृत्यु तथा जन्म-नक्षत्र में चन्द्रमा के आने के अतिरिक्त बिना कारण रात्रि में स्नान नहीं करना चाहिए। मालिश किये हुए शरीर का स्पर्श नहीं करना चाहिए। स्नान के बाद केशों को नहीं झाड़ना चाहिए। स्नान करके हाथ एवं वस्त्र से शरीर को नहीं पोंछना चाहिए।

निवास-नियम—शोभन राजा से युक्त तथा एकतायुक्त मनुष्यों वाले एवं जहाँ क्रोधहीन, न्यायी, ईर्ष्याविहीन मनुष्य हों तथा कृषक एवं ओषधियाँ हों, ऐसे राज्य में रहना चाहिए। बुद्धिमान मनुष्य को ऐसे देश में नहीं रहना चाहिए, जहाँ का राजा दण्ड में सदैव रुचि रखने वाला तथा अशक्त हो और जहाँ की जनता नित्य उत्सव मनाने वाली एवं सदैव जय की इच्छा वाली हो।

अन्य नियम—दूसरे के द्वारा निर्मित बावली इत्यादि में बिना पाँच अंजलि मिट्टी निकाले स्नान न करना चाहिए। देव-निर्मित झीलों, तालावों और नदियों में स्नान करना चाहिए। उद्यानादि में कभी भी असमय (मध्याह्न, निशीथ) में न जाएँ। लोक विद्विष्ट व्यक्ति तथा पति-पुत्र हीना स्त्री से वार्तालाप नहीं करना चाहिए। देवों, पितरों, यज्ञों, भले शास्त्रों (स्मृति आदि) एवं वेदादि के निन्दकों का स्पर्श और उनसे वार्तालाप करने पर मनुष्य सूर्य-दर्शन करके शुद्ध होता है।

उक्त जानकारी के अतिरिक्त श्रीमती डॉ. त्रिपाठी ने इसी अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य विवेक तथा शुद्धि विवेक का भी वर्णन किया है, किन्तु इन विषयों पर क्योंकि इस पुस्तक में अन्यत्र चर्चा की जा चुकी है, इसलिए इन विषयों को यहाँ छोड़ दिया गया है।

●●

६ कुरुक्षेत्र-माहात्म्य

पुरुष श्रेष्ठ संवरण के पुत्र का नाम 'कुरु' था। संवरण ने कुरु का विवाह सुन्दर रूप वाली सुदामा की पुत्री सौदामिनी से कराया। उस राजकुमारी को पत्नी-रूप में प्राप्त करके कुरु धर्म और अर्थ का पालन करने लगे और पिता ने कुरु को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। कुरु अपने राज्य की प्रजा का पालन करने लगे। यश-प्राप्ति के लिए कुरु पृथ्वी पर विचरण करने लगे। इसी विचरण प्रसंग में वह पवित्र द्वैत वन में पहुँचे। यहाँ पर उन्होंने 'सरस्वती' नदी में स्नान किया। यहाँ से उत्तर दिशा में ब्रह्मा जी की समन्त पञ्चक वेदी पर भी कुरु पहुँचे। कुरु ने सोचा कि इस समन्त पञ्चक क्षेत्र को महाफलदायी बनाऊँगा और यहीं समस्त मनोरथों की खेती करूँगा। राजा सुवर्णमय हल बनवा कर उसमें शंकर के बैल और यमराज के भैंसे को जोत कर खेती करने को तैयार हो गये। इन्द्र को कुरु ने बताया कि मैं यहाँ तप, सत्य, क्षमा, दया, शौच, दान, भोग और ब्रह्मचर्य की खेती कर रहा हूँ। इन्द्र के चले जाने पर राजा कुरु प्रतिदिन हल लेकर चारों ओर सात कोसों तक पृथ्वी को जोतते रहे। विष्णु भगवान् ने कुरु की परीक्षा लेने के लिए उसकी भुजाओं को काट दिया, किन्तु कुरु ने अपना समस्त शरीर ही विष्णु भगवान को समर्पित कर दिया। जिस पर प्रसन्न होकर भगवान विष्णु ने उसे वर माँगने को कहा। तब कुरु ने भगवान से वर माँगा—जितने स्थान को मैंने जोता है वह धर्मक्षेत्र हो जाए और यहाँ स्नान करने वालों तथा मरने वालों को महापुण्य की प्राप्ति हो। इस स्थान पर किये गये शुभ कर्म अक्षय हो जाएँ और महान् फलों को प्रदान करें। मेरे नाम के प्रकाशक इस क्षेत्र में आप (विष्णु भगवान्) तथा शिवजी साथ-साथ निवास करें। भगवान् विष्णु ने कुरु को यह वरदान प्रदान किया। यही स्थान कुरुक्षेत्र तथा कुरु जांगल के नाम से विख्यात है। इसी तीर्थ के अन्तर्गत ही कल्याणकारी पृथूदक (पिहोवा) नामक तीर्थ है जहाँ शुभ जल से पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्व की ओर बहती है। यही सरस्वती नदी है। इसी सरस्वती तथा दृषद्वती (घग्घर) के मध्य में स्थित यह महान् तीर्थ

कुरुक्षेत्र है। महामुनि मार्कण्डेय की प्रार्थना पर पवित्र सरस्वती नदी कुरुक्षेत्र में प्रवाहित हुई, जिसकी महिमा का विस्तृत वर्णन मार्कण्डेय द्वारा किया गया है।

आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो राम ह्रदः स्मृतः।
कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम्।
तस्य मध्येन वै गाढ़ं पुण्या पुण्य जलावहा।। (३२/२४)

आरम्भ में इसका पवित्र नाम ब्रह्मसर था, फिर राम ह्रद प्रसिद्ध हुआ। उसके पश्चात् कुरु ऋषि द्वारा कृष्ट होने से कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। उसके मध्य में अत्यन्त पवित्र जल वाली गहरी सरस्वती प्रवाहित हो, मार्कण्डेय की इस प्रार्थना से सरस्वती ने कुरुक्षेत्र में प्रवेश किया। सरस्वती नदी वहाँ रन्तुक में जाकर कुरुक्षेत्र को जल से प्लावित करती हुई पश्चिम दिशा की ओर चली गई।

कुरुक्षेत्र की महिमा का वर्णन करते हुए 'वामनपुराण' में कहा गया है कि वहाँ हज़ारों तीर्थ हैं जो ऋषियों से सेवित हैं। पापियों के लिए भी तीर्थों का स्मरण पुण्यदायक, उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा गया है। फिर पुण्यशालियों के लिए तो कहना ही क्या है। मनुष्य पवित्र हो या अपवित्र अथवा किसी भी अवस्था में पड़ा हो यदि वह कुरुक्षेत्र का स्मरण करे तो वह बाहर तथा भीतर से पवित्र हो जाता है। 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्र में निवास करूँगा', इस प्रकार का वचन कहने से भी मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। मनुष्यों के लिए ब्रह्मज्ञान, गया में श्राद्ध, गौवों की रक्षा में मृत्यु और कुरुक्षेत्र में सरस्वती-तट पर रहते हुए सरोवर में स्नान करने वाले मनुष्य को निश्चित रूप से ब्रह्मज्ञान हो जाता है। देवता, ऋषि और सिद्ध-जन सदा कुरुजांगल का सेवन करते हैं। इस पवित्र तीर्थ में निवास करने से मनुष्य अपने भीतर ब्रह्म का दर्शन करता है। सरस्वती और दृषद्वती, इन दो देव-नदियों के बीच देव-निर्मित प्रदेश को 'ब्रह्मावर्त' कहते हैं—

सरस्वती दृषद्वंत्यो र्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देव निर्मित्तं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते।। (३३/९)

कुरुक्षेत्र के मध्य में सात वन हैं। पवित्र काम्यक् वन, महान् अदिति वन, पुण्यप्रद व्यास वन, फलकी वन, सूर्यवन, महान् मधुबन, सर्व पाप नाशक तथा

पवित्र शीत वन। इन वनों के नाम सभी पापों को नष्ट करने वाले तथा अत्यन्त पवित्र हैं। कुरुक्षेत्र में प्रवाहित नदियों का भी 'वामनपुराण' में उल्लेख किया गया है। वे नदियाँ हैं—परम पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गंगा, मधु स्रवा, वासुनदी, कौशिकी, दृषद्वती तथा हिरण्वती। इनमें से सरस्वती को छोड़कर शेष सभी नदियाँ वर्षा-काल में ही बहने वाली है—

वर्षाकालवहा सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम्। (३४/८)

कुरुक्षेत्र में स्थित तीर्थों में किस प्रकार जाना चाहिए। उन तीर्थों से सम्बन्धित प्राचीन घटना का वर्णन तथा तीर्थों की अत्यन्त विस्तृत सूची 'वामनपुराण' में दी गई है। इन तीर्थों की महिमा का उल्लेख 'वामनपुराण' के ३४वें अध्याय से लेकर ४८वें अध्याय तक इन तीर्थों की विस्तृत चर्चा की गई है, जिनका वर्णन हम पृथक् से अगले अध्याय में कर रहे हैं।

●●

७ सरस्वती नदी की महिमा

ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर लोमहर्षण ऋषि सरस्वती नदी की महिमा का वर्णन करते हुए बताते हैं कि स्मरण-मात्र से ही लोगों के सभी पापों को नष्ट करने वाली यह सनातनी श्रेष्ठ नदी सरस्वती पाँकड़ वृक्ष से उत्पन्न हुई है। यह जलधारमयी महानदी हज़ारों पर्वतों को तोड़ती-फोड़ती हुई प्रसिद्ध द्वैतवन में प्रविष्ट हुई। महामुनि मार्कण्डेय ने प्लक्ष वृक्ष में स्थित नदी-सरस्वती को देखकर उसे सिर झुका कर प्रणाम किया और फिर उसकी स्तुति की। मार्कण्डेय-कृत इस स्तुति में सरस्वती की महिमा का गायन किया गया है। मार्कण्डेय कहते है—'हे देवी! आप सभी लोगों की माता एवं देवों की शुभ अरणि हैं। समस्त सद्, असद् मोक्ष देने वाले एवं अर्थवान् पद, यौगिक क्रिया से युक्त पदार्थ की भाँति आप में मिलकर स्थित है। हे देवी! अक्षर, परमब्रह्म तथा यह विनाश शील समस्त संसार आप में प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार काष्ठ में आग तथा पृथ्वी में गन्ध निश्चित रूप से स्थित होती है, उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म और यह सम्पूर्ण जगत् नित्य (सदा) स्थित हैं। जो कुछ भी स्थिर या अस्थिर चर, अचर है, वह सब ओंकार अक्षर में अवस्थित है। जो कुछ भी अस्तित्ववान या अस्तित्वहीन है उन सबमें ओंकार की तीन मात्राएँ अनुस्यूत हैं। हे सरस्वती! भू भुवः स्वः ये तीनों लोक; ऋक्, यजुः, साम ये तीनों वेद, आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र) त्रयी और वार्त्ता-ये तीनों विद्याएँ; गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि; ये तीनों अग्नियाँ, सूर्य, चन्द्र, अग्नि; ये तीनों ज्योतियाँ; धर्म, ऊर्जा, काम; ये तीनों वर्ग; सत्त्व रज और तम, ये तीनों गुण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीनों वर्ण; तीनों देव; वात, पित्त, कफ़, ये तीनों धातुएँ तथा जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, ये तीनों अवस्थाएँ एवं पिता, पितामह प्रपितामह, ये तीनों पितर आदि, ये सभी ओंकार के मात्रा-त्रय-स्वरूप आपके रूप हैं। आपको ब्रह्म की विभिन्न रूपों वाली आद्या एवं सनातनी मूर्ति कहा जाता है।

इसी क्रम में महर्षि मार्कण्डेय सरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहते

हैं हे देवी! ब्रह्मवादी लोग आपकी शक्ति से ही उच्चारण करके सोम-संस्था, हविः संस्था एवं सनातनी पाक-संस्था को सम्पन्न करते हैं। अर्ध मात्र में आश्रित आपका यह अनिर्देश्य पद अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है। यह आपका अनिर्देश्य पद परम रूप है, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। न तो मुख से ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, तालु ओष्ठ आदि से ही। तुम्हारा वह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म) ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एवं ज्योति है। उसी को विश्वास, विश्वरूप विश्वात्मा एवं अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं। आपका यह रूप सांख्य सिद्धांत तथा वेद द्वारा वर्णित है। आप आदि, मध्य, अन्त से रहित हो। सत्-असत् अथवा एकमात्र सत् ही तुम्हारा रूप है। आपका यह तत्त्वगुणात्मक रूप सुख से भी परम सुख, महान् सुख रूप नाना शक्तियों के विभाव को जानने वाला है।

सरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए महामुनि मार्कण्डेय कहते हैं कि जो पदार्थ नित्य हैं तथा जो विनष्ट हो जाने वाले हैं, जो पदार्थ स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म हैं, जो भूमि पर हैं तथा जो अन्तरिक्ष में हैं या जो इनसे भिन्न स्थानों में हैं, उन समस्त पदार्थों की प्राप्ति आपसे ही होती है। जो मूर्त्त या अमूर्त्त है, वह सब कुछ और जो सब भूतों में एक रूप से स्थित हैं एवं केवल एकमात्र हैं और जो द्वैत में अलग-अलग रूप में दिखलाई पड़ते हैं, वे सब कुछ आपके स्वर-व्यंजनों से सम्बद्ध हैं।

'वामनपुराण' के ४०वें अध्याय में भी महर्षि वसिष्ठ के द्वारा सरस्वती की महिमा का गान किया गया है। वह कहते हैं हे सरस्वती! आप ब्रह्मा के सरोवर से निकली हैं। आपने अपने उत्तम जल से समस्त जगत् को व्याप्त कर दिया है। आप ही आकाश-गामिनी देवी हैं और मेघों में जल को उत्पन्न करती हैं। आप ही सभी जलों के रूप में वर्तमान हैं। आपकी ही शक्ति से हम लोग अध्ययन करते हैं। आप ही पुष्टि धृति, कीर्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा सरस्वती हैं। यह पूरा विश्व आपके ही अधीन है। आप ही समस्त प्राणियों में वाणी-रूप में स्थित हैं।

सरस्वती के सभी दिशाओं में प्रवाहित होने तथा उनमें स्नान करने के महत्त्व

का उल्लेख करते हुए 'वामनपुराण' में कहा गया है—

पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गंगास्नानं फलं लभेत्।
प्रवाहे दक्षिणा तस्या नर्मदा सरितां वरा।।
पश्चिमे तु दिशा भागे यमुना संश्रिता नदी।
यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी।।
एवं दिशा प्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती।
तस्यां स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः॥ (४२/७-९)

जो मनुष्य सरस्वती के पूर्वी-प्रवाह में स्नान करता है उसे गंगा में स्नान करने का फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिणी प्रवाह में सरिताओं में श्रेष्ठ नर्मदा एवं पश्चिम दिशा की ओर यमुना नदी संश्रित हैं, किन्तु जब वह उत्तर दिशा की ओर बहने लगती है तो वह सिन्धु (सिन्ध नदी) हो जाती है। इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में वह पवित्र सरस्वती नदी भिन्न-भिन्न रूपों में प्रवाहित होती है। उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सब तीर्थों में स्नान किये हुए के समान होता है।

पूर्व वाहिनी सरस्वती दुष्कर्मियों के लिए भी पुण्य देने वाली है। जो प्राची सरस्वती के निकट जाकर त्रिरात्र व्रत करता है, उसके शरीर में कोई पाप नहीं रह सकता। जो प्राची सरस्वती में स्नान करते हैं, वहाँ पर जाकर श्राद्ध करते हैं, उनके लिए लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता। पँचमी तिथि को प्राची सरस्वती में स्नान करने वाला लक्ष्मीवान् होता है।

सरस्वती नदी की विशालता, व्यापकता, उसके प्रवाह एवं पापनाशिनी सामर्थ्य का वर्णन 'वामनपुराण' में अत्यन्त विस्तार से हुआ है। इतना ही नहीं 'सरस्वती' किस-किस नाम से कहाँ-कहाँ प्रवाहित होती है इसकी चर्चा भी 'वामनपुराण' में हुई है। नैमिष क्षेत्र में सरस्वती 'काञ्चनाक्षी' के नाम से विद्यमान है। गया क्षेत्र में इसे 'विशाला' नदी कहा गया है। उत्तर कोसल में सरस्वती 'मनोहरा' के नाम से प्रवाहित होती है। केदार तीर्थ में सरस्वती का नाम सुवेणु है। गंगाद्वार में सरस्वती को 'विमलोदा' कहा गया है। भिन्न-भिन्न ऋषियों द्वारा सरस्वती को उक्त प्रदेशों में ले जाया गया था।

●●

तीर्थ-परिचय

लोमहर्षण ऋषि कुरुक्षेत्र में उपस्थित ऋषियों को कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले तीर्थों का परिचय देते हैं। उन्हें बताते हैं कि कुरुक्षेत्र में महाबलवान् रन्तुक नामक द्वारपाल का दर्शन करने के पश्चात् यक्ष को प्रणाम करके तीर्थ-यात्रा आरम्भ करनी चाहिए। उसके पश्चात् महान् **अदितिवन** में जाना चाहिए जहाँ अदिति ने पुत्र-प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या की थी। वहाँ स्नान करना तथा देवमाता अदिति के दर्शन प्राप्त कर **सवन** नाम से विख्यात सर्वोत्तम विष्णु-स्थान को जाना चाहिए जहाँ भगवान् हरि सदा संनिहित रहते हैं। विमल तीर्थ में स्नान तथा विमलेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य निर्मल हो जाता है तथा उसे रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। तत्पश्चात् **पारिप्लव** नामक तीर्थ में जाना चाहिए। **कोशिकी-संगम** तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य को परम-पद की प्राप्ति होती है। **धरणी तीर्थ** में स्नान करने से पृथ्वी पर मनुष्य द्वारा किये गये समस्त अपराध क्षमा कर दिये जाते हैं। उसके पश्चात् **दक्षाश्रम** में जाकर दक्षेश्वर शिव का दर्शन करने से मनुष्य को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाता है। इसके अनन्तर **शालूकिनी** तथा **सर्पिदधि** तीर्थ में जाना चाहिए। तत्पश्चात् **पंचनद तीर्थ, कोटि-तीर्थ** के दर्शन करने चाहिएँ। कोटि तीर्थ में देवताओं ने भगवान् वामन देव की स्थापना की थी। तत्पश्चात् विख्यात **वाराह तीर्थ** है। फिर **सोम तीर्थ** है। जहाँ पूर्व काल में चन्द्रमा ने तपस्या की भी तथा व्याधि से मुक्त हुए थे। वहीं पर **भूतेश्वर** तथा **ज्वालामालेश्वर** नामक लिंग हैं। तत्पश्चात् **कृतशौच, मुञ्जवट** तीर्थ हैं। तत्पश्चात् **रामकुण्ड** तीर्थ है, जिसकी स्थापना परशुराम ने की थी। इन पाँच कुण्डों में स्नान करने से तथा पितरों का तर्पण करने से मनुष्यों की सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। तदनन्तर **वंश मूल** नामक तीर्थ है, फिर **कायशोधन** नामक तीर्थ हैं। तत्पश्चात् तीर्थ-सेवी को **लोकोद्धार** नाम के तीर्थ में जाना चाहिए, यहाँ विष्णु और शिव, दोनों स्थित हैं। तदनन्तर **शालग्राम** तथा **श्री तीर्थ** हैं। यहाँ स्नान करने वालों को भगवती अपने निकट निवास प्रदान करती है।

तीर्थ-परिचय-प्रसंग के अन्तर्गत लोमहर्षण ऋषि आगे बताते हैं कि इसके पश्चात् **कपिल ह्रद (सरोवर)** नामक तीर्थ में जाकर स्नान एवं पितृ-पूजन करना चाहिए। यहाँ स्नान से एक सहस्र कपिला गायों के दान का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् **सूर्य तीर्थ** है, जहाँ स्नान करने से मनुष्य सूर्य लोक को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् **भवानीवन** की यात्रा करनी चाहिए, जहाँ भवानी का अभिषेक करने से एक सहस्र गोदान का फल प्राप्त होता है। **संगिनी तीर्थ, ब्रह्मावर्त्त तीर्थ, सुतीर्थक, कामेश्वर, अम्बुवन, मातृतीर्थ, शीतवन, दण्डक तीर्थ, स्वानुलोमायन तीर्थ, दशाश्वमेधिक** तीर्थ, अन्य तीर्थ हैं जिनकी पाप-मोक्ष की शक्ति का तथा फलदायक क्षमता का वर्णन 'वामन पुराण' में किया गया है। इसी के अन्तर्गत **मानुष तीर्थ** का भी उल्लेख हुआ है, जहाँ स्नान करने से पूर्वकाल में कृष्णमृग मनुष्य बन गये थे। जो भी श्रद्धापूर्वक इस मानुष तीर्थ में स्नान-यज्ञ करते हैं वे स्वर्ग-लोक को प्राप्त करते है, परम गति को पाते हैं। मानुष तीर्थ की पूर्व दिशा में एक कोस पर **आपगा** नाम की एक विख्यात नदी है। जो इस नदी के तट पर श्राद्ध करते हैं, वे उनकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यहाँ पर भाद्रपद के महीने में, कृष्ण पक्ष में चतुर्दशी तिथि को मध्याह्न काल में पिण्डदान करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् **ब्रह्मोदुम्बर तीर्थ** है जो ब्रह्मा का श्रेष्ठ स्थान है। भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ तथा भगवान् अत्रि, इन सात ऋषियों ने पृथ्वी में दुर्लभ इस कुण्ड को बनाया था। ब्रह्मा द्वारा सेवित होने के कारण यह स्थान ब्रह्मोदुम्बर कहलाता है। इसके पश्चात् **कलसी** नामक तीर्थ में जाना चाहिए, जहाँ भद्रा, निद्रा, माया, सनातनी, कात्यायनीरूपा दुर्गा देवी स्वयं अवस्थित हैं। तत्पश्चात् **सरक** तीर्थ है। इस सरक **तीर्थ** में तीन करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। यही पर पापनाशक **इडास्पद तीर्थ** वर्तमान हैं, जहाँ स्नान करने से सभी पापों का नाश होता है। तत्पश्चात् **केदार** नामक महातीर्थ है। वहीं पर **किंरूप तीर्थ** है और सरकतीर्थ के पूर्व में **अन्यजन्म** नामक तीर्थ स्थित है। तत्पश्चात् **नागह्रद, पौण्डरीक, त्रिविष्टप** नामक तीर्थ विद्यमान हैं। वहाँ पापों से विमुक्त करने वाली पवित्र वैतरणी नदी है जहाँ स्नान और पूजा करने से मनुष्य परमगति को प्राप्त

करता है। तत्पश्चात् **रसावर्त** तीर्थ, **अलेपक** तीर्थ, होते हुए फलकीवन में जाना चाहिए। **दृषद्वती** (घग्घर) नदी में स्नान करके देवताओं का तर्पण करने से मनुष्य अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञों से मिलने वाले फल को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् **सुमहत्** तीर्थ तथा **पाणिखात** तीर्थ हैं जो अत्यन्त पुण्य फलदायक हैं। पाणिखात के पश्चात् **मिश्रक** नामक श्रेष्ठ तीर्थ में जाना चाहिए। यहाँ से आगे **मनोजव तीर्थ** में जाकर देवमणि शंकर का दर्शन करना चाहिए। तदनन्तर **मधुवटी तीर्थ** में जाकर पुण्य लाभ करना चाहिए। जो मनुष्य कौशिकी और दृषद्वती नदियों के संगम में स्नान करता और नियत भोजन करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। तत्पश्चात् 'वामनपुराण' में **व्यास स्थली, किंदत्त कूप, अह्प, सुदिन कृतजय, वामनक** नामक तीर्थों का चर्चा की गई है। वामनक तीर्थ में भगवान् विष्णु ने वामनरूप धारण कर बलि का राज्य छीन कर इन्द्र को दिया था। तत्पश्चात् **विष्णुपद तीर्थ; कोटि तीर्थ और कुलोत्तारण तीर्थ की** चर्चा की गई है। तदनन्तर **अमृततीर्थ, शालिहोत्र तीर्थ, श्री कुंज तीर्थ, वेदवती तीर्थ, सोमतीर्थ** और **सप्तसारस्वत तीर्थ** की महिमा वर्णित है। सप्तसारस्वत तीर्थ में सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसह्रदा सरस्वती, ओधवती, विमलोदका एवं सुरेणु नाम की सातों सरस्वतियाँ (नदियाँ) एकत्र मिलकर प्रवाहित होती हैं। इसके पश्चात् **औशनस तीर्थ** तथा उससे सम्बद्ध आख्यान का वर्णन किया गया है। इसी औशनस तीर्थ को ही ऋषियों ने **कपालमोचन** तीर्थ नाम दिया है। यहीं पर विश्वामित्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे। कपालमोचन के पश्चात् **पृथूदक** (पिहोवा) नामक तीर्थ में जाना चाहिए। पृथूदक (पिहोवा) के सम्बन्ध में 'वामनपुराण' में कहा गया है—

सरस्वत्युत्तरे तीर्थे यस्त्यजेदात्मनस्तनुम्।
पृथूदके जप्यपरो नूनं चामरतां व्रजेत। (अ० ३९/२०)

सरस्वती के उत्तर की ओर स्थित पृथूदक नामक तीर्थ में अपने शरीर का त्याग करने वाला जप-परायण मनुष्य निश्चय ही देवत्व को प्राप्त करता है। वहीं (पृथूदक में) ब्रह्मा द्वारा निर्मित **ब्रह्मयोनि** तीर्थ है और **अवकीर्णक** नाम का एक विख्यात तीर्थ भी यहाँ स्थित है। यहीं पर प्रसिद्ध '**यायात**' (ययाति) तीर्थ

तथा **वसिष्ठोद्वाह** तीर्थ हैं ; वसिष्ठोद्वाह तीर्थ कैसे बना इसके विषय में एक आख्यान भी दिया गया है। तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र के तीर्थों के अन्तर्गत **शतसाहस्त्रिक तीर्थ, शतिक तीर्थ, रेणुका तीर्थ, ऋणमोचन तीर्थ, ओजस् तीर्थ, प्राची सरस्वती, पञ्चनद तीर्थ, कुरुतीर्थ, अनरकतीर्थ, काम्यक वन** आदि का वर्णन हुआ है। तदनन्तर **स्थाणुतीर्थ**, स्थाणुवट **सन्निहित सरोवर** के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। स्थाणु तीर्थ से सम्बन्धित आख्यान तथा इस तीर्थ की महिमा का वर्णन किया गया है। 'वामनपुराण' में कह गया है—

अहन्यहनि तीर्थानि आसुमद्र सरांसि च।
स्थाणु तीर्थं समेष्यन्ति मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।। (४५/४)

समुद्र से लेकर सरोवर तक के तीर्थ प्रतिदिन भगवान् सूर्य के आकाश के मध्य में आ जाने पर (दोपहर में) स्थाणु तीर्थ में आ जाते हैं। इस स्थाणु तीर्थ में स्थित स्थाणुवट की उत्तर दिशा में **शुक्रतीर्थ**, पूर्व दिशा में **सोम तीर्थ**, दक्षिण में **दक्ष तीर्थ** और पश्चिम में **स्कन्द तीर्थ** स्थित हैं। इन परमपावन तीर्थों के बीच में स्थाणुनामक तीर्थ है जिसका दर्शन करने मात्र से परमपद की प्राप्ति होती है। इस तीर्थ में स्थापित शिवलिंगों की महिमा का वर्णन करते हुए यह भी बताया गया है कि किस लिंग की स्थापना किस ऋषि या देवता द्वारा गई थी। स्थाणुतीर्थ के सन्दर्भ में ही राजा वेन के चरित्र, पृथु के जन्म और वेन के उद्धार की कथा अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। पृथूदक (पिहोवा) तीर्थ के सन्दर्भ में अक्षय तृतीया के महत्त्व की कथा के साथ ही तीर्थ-परिचय एवं तीर्थ-माहात्म्य का यह वर्णन समाप्त हुआ है।

प्राचीनकाल में ये कुरुक्षेत्र में सभी तीर्थ विद्यमान रहे होंगे। वर्तमान समय में तो कुछ तीर्थ ही विद्यमान हैं, अधिकांश तीर्थ लुप्त हो गये हैं।

●●

वामनावतार-वर्णन

'वामनपुराण' में वामन भगवान् की चर्चा दो बार हुई है। इसके २३वें से २६वें अध्याय तक वामनावतार के उपक्रम का वर्णन हुआ है तथा इसके ८९वें ९२वें अध्यायों तक पुन: भगवान् वामन की कथा वर्णित है। हम यहाँ संक्षेप में वामनावतार की कथा इस पुराण के आधार पर प्रस्तुत कर रहे हैं।

दैत्यों का आदि गुरु हिरण्यकशिपु था। उसका पुत्र प्रह्लाद अत्यन्त तेजस्वी एवं धर्मात्मा था। प्रह्लाद के पुत्र का नाम था विरोचन और विरोचन का पुत्र हुआ बलि। बलि अत्यन्त शक्तिशाली, तेजस्वी दैत्य था जिसने सभी स्थानों से देवताओं को खदेड़ दिया और तीनों लोक दैत्यों के अधीन हो गये। प्रयत्न करने पर भी देवता दैत्यों को पराजित नहीं कर सके। बलि धर्मपूर्वक राज्य करने लगा और राज्य सुख-समृद्धि से चलने लगा। ब्रह्मवादी बलि ने चराचर, त्रैलोक्य का अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया। इन्द्र ने जब देखा कि वह विवश हो गया है तब वह अपनी माता अदिति के पास पहुँचा और देवताओं की पराजय की बात माता से कही। अदिति ने ब्रह्मवादी अपने पति कश्यप से सभी देवताओं के सम्मुख बलि के वैभव एवं विजय की बात कही और देवताओं ने कश्यप जी से निवेदन किया कि वे देवों की पुष्टि-वृद्धि के लिए प्रयास करें। कश्यप जी सभी देवताओं को ब्रह्माजी के पास ले गये और ब्रह्मा जी उन्हें साथ लेकर भगवान् विष्णु की सेवा में गये। अदिति और कश्यप को भगवान् ने तपस्या करने का आदेश दिया। अन्य देवताओं ने भी श्वेत द्वीप में तपस्या आरम्भ कर दी। तपस्या के उपरान्त कश्यप और अदिति ने भगवान् से वर माँगा, 'भगवान् ही हमारे पुत्र बनें'—

भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः। (अ. २५/१५)

देवताओं तथा कश्यप ने भी भगवान् विष्णु की स्तुति की और भगवान् ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया—'आप सभी के जितने भी शत्रु होंगे वे मेरे सम्मुख क्षणमात्र भी नहीं टिक सकेंगे—

सर्वेषामेव युष्माकं ये भविष्यन्ति शत्रवः।
मुहूर्त्तमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः॥ (२७/७)

यह सुनकर सभी देवगण प्रफुल्लित हो गये। उनका मन हर्ष से प्रसन्न हो गया।

सभी देवता अपने-अपने अधिवास में चले गये। अदिति ने भी कुरुक्षेत्र में जाकर घोर तपस्या की और दीर्घकाल तक की गई तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने अदिति के गर्भ में प्रवेश किया। भगवान् के गर्भ में आ जाने से सारी पृथ्वी डगमगा गई। बड़े-बड़े पर्वत हिलने लगे एवं विशाल समुद्र विक्षुब्ध हो गये। अदिति जहाँ-जहाँ जाती या पैर रखती थी, वहाँ-वहाँ पृथ्वी झुक जाती थी। मधु सूदन के गर्भ में आने पर सभी दैत्य तेजहीन, कान्तिहीन हो गये। महाराजा बलि ने अपने पितामह से अपनी तेजस्विता के नष्ट होने का कारण पूछा तो प्रह्लाद ने अपने मन को ध्यानस्थ किया और ध्यानावस्था में उन्होंने अदिति की कोख में वामन के रूप में भगवान् को देखा। प्रह्लाद वामन रूपधारी भगवान् को गर्भ में देखकर आश्चर्य में पड़ गये। प्रह्लाद दैत्यों के राजा बलि से बोले कि भगवान् मर्यादा की स्थापना के लिए अदिति के गर्भ में आ गये हैं और अंशावतार-रूप में अदिति के गर्भ से अवतीर्ण होंगे।

प्रह्लाद की बात सुनकर बलि ने कहा कि भगवान् के इस अवतार से हम भयभीत क्यों हों? हमारे पास विप्रचित्ति, शिव, शंकु, अयः-शंकु, हयशिरा, अश्वशिरा, भंगकार, महाहनु, प्रतापी, प्रघश, शम्भु, दुर्जय एवं कुक्कुराक्ष जैसे दैत्य एवं दानव योद्धा हैं। ये सभी परम प्रतापी महापराक्रमी तथा अत्यन्त बलवान् हैं। कृष्ण (जिनका वामन रूप में अवतार हो रहा है) तो हमारे योद्धाओं की शक्ति के सामने अत्यन्त क्षीण एवं क्षुद्र हैं। बलि की बात सुनकर प्रह्लाद बहुत क्रुद्ध हो गये और बोले—

विनाशमुपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवाः।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बद्धिरविवेकवान्॥ (अ. २९/३४)

तेरे जैसे विवेकहीन एवं दुर्बुद्धि राजा के साथ ये सारे दैत्य एवं दानव मारे जाएँगे। प्रह्लाद ने बलि की भरपूर प्रताड़ना करते हुए उसे यह भी कहा कि मैं विष्णु भगवान् का भक्त हूँ, तुमने मेरी भी उपेक्षा करके विष्णु भगवान् का तिरस्कार किया है। अतः तुम्हारा नाश निश्चित है। साथ ही एक स्तोत्र के रूप में प्रह्लाद के द्वारा विष्णु की स्तुति का गायन किया गया।

महाराज बलि अपने पितामह प्रह्लाद से क्षमा-याचना करते हुए उनके क्रोध को शान्त करते हैं और प्रह्लाद भी उसे क्षमा प्रदान करते हैं। तत्पश्चात् अदिति के गर्भ से भगवान् वामन के प्रकट होने तथा ब्रह्मा जी के द्वारा वामन की स्तुति का वर्णन किया गया है। ब्रह्मा जी वामन को मृगचर्म शाल देते हैं। भगवान् बृहस्पति द्वारा वामन का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। उधर शुक्राचार्य के निर्देशन में बलि ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया है। वनों, पर्वतों सहित पृथ्वी को विक्षुब्ध देखकर बलि शुक्राचार्य से इसका कारण पूछते हैं। शुक्राचार्य ने ध्यानस्थ होकर सब कुछ जान लिया और महाराज बलि को बताया कि कश्यप के घर में संसार को उत्पन्न करने वाले सनातन परमात्मा वामन-रूप में अवतीर्ण हो गये हैं और हे श्रेष्ठ दानव! वे ही प्रभु तुम्हारे यज्ञ में आ रहे हैं। उन्हीं के पैर रखने से यह पृथ्वी काँप रही है, ये पर्वत भी काँप रहे हैं, सिन्धु में ज़ोरों की लहरें उठ रही हैं। शुक्राचार्य की बात सुनकर बलि के रोंगटे खड़े हो गये। तत्पश्चात् बलि ने शुक्राचार्य से कहा कि मैं धन्य एवं कृत-कृत्य हो गया जो स्वयं यज्ञ के स्वामी मेरे यज्ञ में पधार रहे हैं। इस अवसर पर मुझे जो करना चाहिए उसके सम्बन्ध में मुझे आप आदेश दें। बलि की बात सुनकर शुक्राचार्य वेद-विधान की चर्चा करते हैं और बलि को कहते हैं—'**स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि प्रतिज्ञा नैव वोढव्या।**' तुम थोड़ी-सी भी वस्तु देने के लिए उनसे प्रतिज्ञा मत करना। बस व्यर्थ की मधुर एवं कोमल बातें ही करना। शुक्राचार्य से अपनी असहमति प्रकट करते हुए राजा बलि दान की महिमा का वर्णन करते हैं। दान के कारण यदि विपत्ति आती है तो उसे वीर-पुरुष प्रशंसनीय कहते हैं, क्योंकि दान का महत्त्व उससे बढ़ जाता है। अतः 'नहीं है', ऐसा मैं कैसे कह सकता हूँ। *उपभोगाच्छत गुणं दानं सुखकरं स्मृतम्।* धन के उपभोग की अपेक्षा उसका दान देना सौगुना सुख देने वाला माना गया है। अतः 'हे गुरुदेव! गोविन्द के यहाँ उपस्थित होने पर आप मेरे दान में विघ्न न डालें।' शुक्राचार्य और महाराज बलि में इस प्रकार की बात हो ही रही थी कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य भगवान् अपनी माया से अपना वामन-रूप धारण करके वहाँ पहुँच गये। वामन-रूप में भगवान् को वहाँ उपस्थित देखकर बलि ने अपने सम्पूर्ण जीवन को सफल माना। स्वयं को धन्य मानते हुए महासुर बलि ने गोविन्द की पूजा की और कहा, 'हे वामनदेव!

अनन्त सुवर्ण, रत्नों के ढेर, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, गायें और ग्राम-समूह, ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपकी जो अभिलाषा हो वही मैं देता हूँ। आप अपना अभीष्ट बतलाएँ।' बलि के विनम्र निवेदन को सुनकर भगवान वामन बोले—

ममाग्नशरणार्थाय देहि राजन् पद त्रयम्।
सुवर्ण ग्राम रत्नादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥ (अ. ३१/४४)

राजन्! मुझे अग्निशाला के लिए तीन पग भूमि दें। सुवर्ण, ग्राम एवं रत्न आदि उनकी इच्छा रखने वाले याचकों को प्रदान करें। भगवान् बलि की याचना को सुनकर बलि ने कहा—'तीन पगभूमि से आपका कौन-सा स्वार्थ सिद्ध होगा, सौ अथवा सौ हज़ार पग भूमि आप माँगिये।' बलि को भगवान कहते हैं, 'मैं तो इतने से ही कृत-कृत्य हूँ। मुझे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए।' वामन की बात सुनकर बलि ने वामन को तीन पग भूमि देने का वचन दे दिया। दान देने के लिए हाथ पर जल गिरते ही वामन अवामन (विराट्) बन गये। तत्काल उन्होंने अपने सर्वदेवमय स्वरूप प्रकट कर दिया। उनके अलग-अलग अंगों में विभिन्न देवों का निवास था। विराट् रूप भगवान विष्णु ने तीनों पगों में ही तीनों लोकों को नाप लिया और त्रैलोक्य पर अपना अधिकार कर लिया और बलि को अनेक प्रकार के वर प्रदान किये। बलि को वरदान और इन्द्र को स्वर्ग का राज्य प्रदान कर भगवान् अन्तर्हित हो गये। तब से बलशाली इन्द्र पहले की भाँति तीनों लोकों का शासन करने लगे और दैत्यों को पाताललोक में रहने का आदेश मिला। अतः बलि सर्वदा पाताल में निवास करने लगे।

'वामनपुराण' में यह प्रसंग दो बार वर्णित है—८९ से ९२वें अध्यायों तक पुनः इसी कथा को थोड़ा रोचक बनाकर प्रस्तुत किया गया है। इसी घटना के वर्णन के कारण ही इस पुराण का नाम 'वामनपुराण' है। अतः इसकी पुनरावृत्ति दोष नहीं लगती।

●●

१० प्रह्लाद की तीर्थ-यात्रा

महर्षि पुलस्त्य तथा नारद के संवाद के रूप में प्रह्लाद की तीर्थ-यात्रा का वर्णन 'वामनपुराण' के कई अध्यायों में किया गया है। नारद पूछते हैं कि प्रह्लाद किन-किन तीर्थों में गये। पुलस्त्य प्रह्लाद की पाप-नाशिनी तीर्थ-यात्रा के सम्बन्ध में नारद को बताते हैं। वह बताते हैं कि प्रह्लाद सर्वप्रथम कल्याणकारी मानस तीर्थ में गये जहाँ मत्स्यावतारी देवादिदेव निवास करते हैं। वहाँ पर प्रह्लाद ने पुण्यदायिनी कौशिकी में स्नान किया। वहाँ से वह हस्तिनापुर गये। वहाँ विश्वपति गोविन्द देव की पूजा के पश्चात् प्रह्लाद यमुना नदी के पास पहुँच गये। वहाँ स्नान-तर्पण के पश्चात् उन्होंने जगन्नाथ त्रिविक्रम (वामन भगवान्) का दर्शन किया। यहाँ पर भगवान् वामन के अवतार ग्रहण करने की कथा भी वर्णित है। दैत्यराज धुन्धु के अश्वमेध यज्ञ, देवताओं की पराजय एवं हताशा तथा भगवान् से अपनी रक्षा की प्रार्थना करने पर विष्णु भगवान् द्वारा वामन-रूप धारण कर तीन पग भूमि माँगने और दैत्यराज धुन्धु को पाताल लोक भेजने का भी वर्णन हुआ है। यमुना में स्नान करके फिर वे लिंग भेदनामक पर्वत पर चले गये। वहाँ से केदार तीर्थ और कुंजाग्र तीर्थों में गये। वहाँ से ऋषिकेश होते हुए बदरिकाश्रम गये, वहाँ रहते हुए उन्होंने सरस्वती में स्नान किया और फिर वराह तीर्थ में चले गये जहाँ उन्होंने गरुडासन विष्णु का दर्शन एवं पूजन किया। वहाँ से भद्रकर्ण में पहुँच कर शशिशेखर शिव का दर्शन किया। यहाँ से वह विपाशा (व्यास) की ओर चले गये और विपाशा में पवित्र स्नान किया। फिर इरावती की ओर चले गये।

प्रह्लाद की तीर्थ-यात्रा का विवरण देते हुए आगे बताया गया है कि प्रह्लाद ने शाकल तीर्थ में आराधना की। जिस तीर्थ में पुरूरवा को उत्तम रूप एवं दुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था। 'वामनपुराण' में पुरूरवा के इस आख्यान का वर्णन करने के पश्चात् बताया गया है कि प्रह्लाद ने इरावती नदी में स्नान किया तथा चैत्रमास की अष्टमी तिथि में जनार्दन की पूजा की। यहाँ से प्रह्लाद कुरुक्षेत्र पहुँचे। कुरुक्षेत्र

से सम्बन्धित कई तीर्थों पर प्रह्लाद ने स्नान-दान पूजन आदि क्रियाएँ सम्पादित कीं। इसी सन्दर्भ में जलोद्भव नाम के एक दैत्य का आख्यान वर्णन करने के अनन्तर प्रह्लाद की नैमिषारण्य की यात्रा का विवरण दिया गया है। वहाँ से वह गया तीर्थ में चले गये जहाँ उन्होंने ब्रह्मध्वज में स्नान किया तथा पितरों के निमित्त पिण्डदान किया। तत्पश्चात् इन्द्र तीर्थ में जाकर महानदी में स्नान किया और वहाँ से सरयू के समीप पहुँचे। स्नान-दान करने के उपरान्त प्रह्लाद विरजा नगरी में चले गये। छः रातों तक यहाँ निवास करने के उपरान्त दक्षिण दिशा में स्थित वह महेन्द्र पर्वत पर चले गये। वहाँ अर्धनारीश्वर महादेव का दर्शन तथा पूजन कर पितरों की अर्चना करके उत्तर दिशा की ओर चले गये। वहाँ शम्भु एवं गोपाल का दर्शन करने के उपरान्त प्रह्लाद सोमतीर्थ में स्नान कर सह्य पर्वत पर चले गये। वहाँ महोदकी में स्नान करके, देवताओं, पितरों की पूजा करके पारियात्र पर्वत पर चले गये। वहाँ लाङ्गलिनी में स्नान के पश्चात् अपराजित का पूजन किया और फिर कशेर देश में जाकर विश्वरूप का दर्शन किया।

तत्पश्चात् प्रह्लाद सुगन्धि-युक्त मलय पर्वत पर गये। वहाँ महाह्रद में स्नान करके शंकर की पूजा करके सदाशिव का दर्शन करने के लिए वह विन्ध्य पर्वत पर गये। वहाँ तीन रातों तक निवास करके प्रह्लाद अवन्ती नगरी में गये। वहाँ शिप्रा के जल में स्नान करके श्रद्धापूर्वक विष्णु भगवान् का पूजन किया और भगवान् महाकाल का दर्शन किया तथा वहाँ से निषध देश की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने अमरेश्वर देव का दर्शन एवं अर्चन किया। वहाँ से अश्व तीर्थ में स्नान करके श्रीधर का अर्चन करके पाञ्चाल देश में चले गये। वहाँ ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न धनपति कुबेर के पुत्र पाञ्चालिका का दर्शन करके प्रह्लाद प्रयागराज चले गये। यहाँ पर यमुना के विख्यात तीर्थ स्नान करने के पश्चात् वटेश्वर रुद्र तथा योगशायी माधव का दर्शन एवं पूजन किया। माघमास में यहीं प्रयाग में निवास करने के पश्चात् प्रह्लाद काशी चले गये। वहाँ असी और वरुणा के विभिन्न तीर्थों में स्नान के पश्चात् देवों-पितरों की अर्चना की तथा पुरी (वाराणसी) की प्रदक्षिणा की। वहाँ से वह मधुवन तथा पुष्करारण्य गये जहाँ उन्होंने पुष्कराक्ष एवं ब्रह्मा का अर्चन किया। उसके पश्चात् कोटि-तीर्थ में सरस्वती के तट पर स्थित विख्यात रुद्रकोटि वृषभध्वज का दर्शन किया। शम्भु

की असंख्य मूर्तियाँ होने के कारण यह तीर्थ रुद्रकोटि तीर्थ के नाम से विख्यात है। वहाँ से प्रह्लाद कुरुजांगल चले गये, जहाँ उन्होंने सरस्वती के जल में निमग्न हुए देवताओं से पूजित स्थाणु-पार्वती-पति भगवान् शंकर का दर्शन किया। सरस्वती के पवित्र जल में स्नान कर उन्होंने श्रद्धापूर्वक स्थाणु की पूजा की तथा दशाश्वमेध में स्नान कर देवों एवं पितरों का अर्चन किया।

यहाँ पर प्रह्लाद ने कन्याह्रद में स्नान से पवित्र होकर सहस्रलिंग का अर्चन किया तथा यहाँ से सोमतीर्थ चले गये। वहाँ से पद्मा नामक नगरी में गये जहाँ उन्होंने कार्तिकेय का पूजन किया। वहाँ से वह नर्मदा के निकट गये जहाँ उन्होंने वाराह भगवान् की आराधना की। कोकामुख तीर्थ में स्नान करके प्रह्लाद अर्बुदेश (आबू पर्वत) में गये जहाँ महादेव का पूजन किया। फिर उन्होंने कालिंजर में जाकर नीलकण्ठ का दर्शन किया और व्हाँ से समुद्र के तट पर प्रभास तीर्थ में चले गये। यहाँ उन्होंने सरस्वती नदी और सागर के संगम में स्नान किया और कपर्दी सोमेश्वर के दर्शन किए। वहाँ से महालय में जाकर उन्होंने रुद्र की पूजा की तथा उत्तर कुरु चले गये। वहाँ पद्मनाभ का दर्शन करके वह सप्त गोदावर तीर्थ गये, जहाँ प्रह्लाद ने भीम विश्वेश्वर का दर्शन, दारुवन में जाकर लिंग का दर्शन किया जहाँ से ब्राह्मणी नदी में जाकर स्नान करके प्रह्लाद ने त्रिदशेश्वर महादेव की अर्चना की। उसके पश्चात् प्लक्षावतरण में जाकर उन्होंने श्रीनिवास की पूजा की। यहाँ से प्रह्लाद शूर्पारक, मागधारण्य, शोण (नदी) के तट पर, महाकोशी तथा त्रिविष्टप गये जहाँ पर भिन्न-भिन्न देवों की उन्होंने पूज-अर्चना की। वहाँ से प्रह्लाद कनखल गये जहाँ उन्होंने भद्रकालीश, वीरभद्र तथा धनाधिप मेघांक की पूजा की तथा वहाँ से गिरिव्रज चले गये। वहाँ के देवों की आराधना के अनन्तर प्रह्लाद कामरूप चले गये जहाँ उन्होंने त्रिनेत्रशंकर तथा पार्वती की विधिवत् अर्चना की तथा महारण्य तीर्थ चले गये। यहाँ भी उन्होंने शिव की आराधना की।

यहाँ से प्रह्लाद त्रिकूट पर्वत पर चले गये। यहाँ उन्होंने तीन मास तक श्रद्धापूर्वक निवास किया। यहाँ उन्होंने स्नान-दान, अर्चन करके दण्डकवन चले गये जहाँ उन्होंने पुण्डरीकाक्ष के दर्शन किए। तीनों रातों तक भूमि-शयन करते हुए यहाँ पर प्रह्लाद ने निवास किया। तत्पश्चात् वह शालग्राम तीर्थ में चले गये,

जहाँ उन्होंने भगवान् विष्णु की भक्ति में लीन हो गये।

प्रह्लाद की तीर्थ-यात्रा समूचे देश की यात्रा है। राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता की यात्रा है। अलग-अलग तीर्थों पर अलग-अलग देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करने से इस देश की धार्मिक-साम्प्रदायिक सहिष्णुता सद्भावना का पता चलता है। ऐसी धार्मिक उदारता भला अन्यत्र कहाँ मिलेगी ? प्रह्लाद जो मूलत: एक दैत्य है, दानव है उसके द्वारा समूचे देश की तीर्थ-यात्रा से दैत्य एवं वैष्णव संस्कृति की एकता का भी बोध होता है। देश के प्रसिद्ध पर्वतों, यहाँ की पवित्र नदियों का भी वर्णन इसी सन्दर्भ में हुआ है। देश के तीर्थों की भरपूर जानकारी प्रह्लाद की तीर्थ-यात्रा के माध्यम से कराई गई है।

●●

११ जम्बूद्वीप तथा भारतवर्ष वर्णन

सुकेशी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए ऋषि उसे बताते हैं कि ब्रह्मा ने द्वीप नाम वाले अनेक स्थानों की रचना की हैं—'**स्थानानि द्वीप संज्ञानि कृतवांश्च प्रजापति।**' उन द्वीपों के मध्य में ब्रह्मा ने जम्बूद्वीप की रचना की है। उसका प्रमाण (विस्तार) एक लाख योजन का कहा जाता है। उसके बाहर दुगुने परिमाण का लवण-समुद्र है और उसके पश्चात् प्लक्षद्वीप है जो जम्बूद्वीप से दुगुना है। प्लक्षद्वीप के बाहर दुगुने प्रमाण वाला वलयाकार इक्षुरस का सागर है। इस महोदधि का दुगुना शालमली द्वीप है, जिसके चारों ओर इससे दुगुना सुरासागर है। उससे दुगुना कुशद्वीप है जो घृत सागर से आवेष्टित है। घृत सागर से दुगुना क्रौंचद्वीप है। क्रौंच द्वीप दधि समुद्र से घिरा है जो क्रौंचद्वीप से दुगुना है। दधिसागर से दुगुना शाकद्वीप है। शाकद्वीप से द्विगुणा उत्तर में क्षीर सागर है जिसमें शेष-शय्या पर श्री हरि सोये हैं। ये सभी परस्पर एक दूसरे से द्विगुण प्रमाण में स्थित हैं। जम्बूद्वीप से लेकर क्षीर-सागर के अन्त तक का विस्तार चालीस करोड़ नब्बे लाख पाँच योजन है। इसके पश्चात् पुष्कर द्वीप एवं स्वादुजल का समुद्र है। पुष्करद्वीप का परिमाण चार करोड़ बावन लाख योजन है। उसके चारों ओर इतने ही परिमाण का समुद्र है। इन द्वीपों के सम्बन्ध के मात्र इतनी ही जानकारी 'वामनपुराण' में दी गई है। किन्तु जम्बूद्वीप के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

सुकेशी को जम्बूद्वीप का परिचय देते हुए ऋषि बताते हैं कि यह द्वीप अत्यन्त विशाल है तथा नौ भागों में विभक्त है। यह स्वर्ग तथा मोक्ष-फल को देने वाला है। जम्बूद्वीप के बीच में इलावृत वर्ष पूर्व में भद्राश्व वर्ष पूर्वोत्तर में हिरण्यकवर्ष है। इसके पूर्व-दक्षिण में किन्नर वर्ष, दक्षिण में भारतवर्ष तथा दक्षिण-पश्चिम में हरिवर्ष बताया गया है। इसके पश्चिम में केतुमाल वर्ष, पश्चिमोत्तर में रम्यक वर्ष तथा उत्तर में कल्पवृक्ष से समादृत कुरुवर्ष है। ये नौ पवित्र रमणीय वर्ष (देश) हैं। भारतवर्ष के अतिरिक्त इलावृतादि आठ वर्षों में युगावस्था (कलियुग आदि) तथा जरा-मृत्यु का भय नहीं होता। उन वर्षों में बिना किसी विशेष प्रयत्न के

बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिलती हैं। भारतवर्ष के भी नव उपद्वीप हैं। ये सभी-द्वीप समुद्रों से घिरे हुए हैं और परस्पर अगम्य है। भारतवर्ष के उपद्वीपों के नाम हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल और वारुण। मुख्य नवाँ द्वीप है जो कुमार द्वीप कहलाता है, जो भारत सागर से लगा हुआ है और दक्षिण से उत्तर की ओर फैला हुआ है। भारतवर्ष के पूर्व की सीमा पर किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आन्ध्र तथा उत्तर में तुरुष्क लोग निवास करते हैं। इसके बीच में चारों वर्णों के लोग रहते हैं। यज्ञ, युद्ध एवं वाणिज्य आदि कर्मों से ये सभी पवित्र हो गये हैं।

इस भारतवर्ष में महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र नाम वाले सात मुख्य पर्वत हैं। उसके मध्य में अन्य लाखों पर्वत हैं जो अत्यन्त विस्तृत उत्तुंग, रम्य एवं सुन्दर शिखरों वाले हैं। कुछ अन्य पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं—कोलाहल, वैभ्राज, मन्दार, दर्दुर, वातंधम, वैद्युत, मैनाक, ,सरस, तुंग-प्रस्थ, नागगिरि गोवर्धन, उज्जयन्त (गिरनार) पुष्पगिरि, अर्बुद (आबू), रैवत, ऋष्यमूक, गोमन्तर (गोवा का पर्वत), चित्रकूट, कृतस्मद, श्रीपर्वत, कोंकण तथा अन्य सैंकड़ों पर्वत।

इस भारतवर्ष में आर्यों और म्लेच्छों के विभागों के अनुसार जनपद हैं। यहाँ के निवासी जिन उत्तम नदियों का जल पीते हैं, वे हैं—पाँच रूपों वाली सरस्वती, यमुना, हिरण्वती, सतलुज, चन्द्रिका, नीला, वितस्ता, ऐरावती, कुहू, मधुरा, देविका, उशीरा, धातकी, रसा, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, निश्चीरा गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, वधूसरा, सरयू तथा लौहित्या। ये नदियाँ हिमालय की तहलटी से निकलती हैं। वेद स्मृति, वेदवती, वृत्रध्नी, सिन्धु, जर्णाशा, नन्दिनी, पावनी, यही, पारु, चर्मण्वती, लूपी, विदिशा, वेणुमती, सिप्रा तथा अवन्ती, ये नदियाँ पारियात्र पर्वत से निकलती है। महानदशोण, नर्मदा, सुरसा, कृपा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, अपवाहिका, चित्रोत्पला, तमसा, करयोदा, पिशाचिका, पिप्लश्रोणी, विपाशा, वञ्जुला, सत्सन्तजा, शुक्तिमतीं, मञ्जिष्ठा, कृत्रिमा, वसु और बालुवाहिनी-ऋक्ष पर्वत की तलहटी से निकलती हैं। शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणा, वैतरणी, सिनीबाहु, कुमुद्वती, तोया,

महागौरी, दुर्गन्धा तथा वाशिला, ये नदियाँ विन्ध्य पर्वत से निकलती हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, वञ्जुला, उत्पलावती, सिनी तथा सुदामा, ये नदियाँ शुक्तिमान पर्वत से निकलती हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, सरस्वती, तुंगभद्रा सुप्रयोगा, बाह्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, रेवा-वारिसेना तथा कलस्वना, ये महानदियाँ सह्यपर्वत से निकलती हैं। ये सभी नदियाँ पवित्र, पापों का नाश करने वाली, जगत् की माताएँ तथा सागर की पत्नियाँ हैं।

देश के किस भाग में कौन-सी जातियों का निवास है, इसकी चर्चा करते हुए 'वामनपुराण' में कहा गया है कि मत्स्य, कुशट्ट, कुणि, कुण्डल, पाञ्चाल, काशी, कोसल, वृक, शबर-कौवीर, भूलिंग, शक तथा मशक-जातियों के मनुष्य मध्य देश में रहते हैं। वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतौयक, अपरान्त, शूद्र पह्लव, खेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शातद्रव, ललित्थ, पारावत, मूषक, माठर, उदकधार, कैकेय, दशम, क्षत्रिय, प्रतिवैश्य तथा वैश्य, शूद्रों के कुल, काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलौकिक, चीन, तुषार, बहुधा, वाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, दशेरक, लम्पक, तावक, राम, शूलिक, तंगण, औरस, अलिभद्र, किरातों की जातियाँ, तामस, क्रममास, सुपार्श्व, पुण्ड्रक, कुलूत, कुहुक, ऊर्ण, तूणीपाद, कुक्कुट, माण्डव्य एवं मालवीय, ये जातियाँ उत्तर भारत में निवास करती हैं।

जनपदों का परिचय देते हुए 'वामनपुराण' में बताया गया है कि अंग (भागलपुर) वंग एवं मुद्गरव (मुंगेर) अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, वाङ्गेय, मांसाद, बलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गव, केशवर्वर, प्राग्ज्योतिष, शूद्र ताम्रलिप्तक, माला, मगध एवं गोनंद, ये पूर्व के जनपद हैं। पुण्ड्र, केरल, चौड, कुल्य, जातुष, मूषिकाद, कुमाराद, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिंगर (उड़ीसा) आभीर, नैषीक, आरण्य, शबर, बलिन्ध्य, विन्ध्य मौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, सौशिक, अश्मक, भोगवर्धन, वैषिक, कुन्दल, अन्ध्र, उद्भिद एवं नलकारक, ये दक्षिण के जनपद हैं। शूर्पारक (मुम्बई का क्षेत्र) कारिवन, दुर्ग, तालीकट पुलीय, ससिनील, तापस, तामस, कारस्कर, रमी, नासिक्य अन्तर, नर्मद, भारकच्छ, माहेय, सारस्वत, वात्सेय, सुराष्ट्र, आवन्त्य एवं अर्बुद, पश्चिम

दिशा के जनपदों के नाम हैं। कारूष, एकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज, किंकवर, तोशल, कोशल, त्रैपुर, ऐल्लिक, तुरुस, तुम्बर, वहन, नैषध अनूप, तुण्डिकेर, वीतहोत्र तथा अवन्ती, ये सभी विन्ध्याचल के मूल (तराई) में स्थित हैं। निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तंगण, खश, कुथप्रावरण, ऊर्ण, पुण्य, हूहुक, त्रिगर्त, किरात तोमर एवं शिशिराद्रिक पर्वताश्रित प्रदेशों के नाम हैं।

'वामनपुराण' में उपर्युक्त जनपदों के निवासियों के लिए देश-धर्म की चर्चा के साथ भारतवर्ष का यह वर्णन समाप्त हुआ है। निश्चय ही प्राचीन भारत के भूगोल को जानने के लिए 'वामनपुराण' में वर्णित नदियों, पर्वतों तथा जनपदों का अध्ययन उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

●●

१२ विष्णु-माहात्म्य

'वामनपुराण' में भगवान् वामन की कथा वर्णित है। वामन विष्णु के अवतार हैं, अतः वामन की महिमा वस्तुतः विष्णु की ही महिमा है। विष्णु की महिमा का वर्णन करते हुए प्रह्लाद कहते हैं—'आप ही अनन्त नारायण पीताम्बरधारी जनार्दन हैं। आप ही कमल-नयन शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु हैं। आप अव्यय, महेश्वर तथा शाश्वत परम पुरुषोत्तम हैं। योगीजन आपका ही ध्यान करते हैं। विद्वान् पुरुष आपकी ही पूजा करते हैं। वेदज्ञ आपके नाम का जप करते हैं तथा याज्ञिक जन आपका यजन करते हैं। आप ही अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि, धराधर, महामत्स्य हयग्रीव तथा श्रेष्ठ कच्छप (कूर्म) अवतारी हैं। ………आप ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण और वायु हैं। हे खगेन्द्रकेतु (गरुड़ध्वज) आप सूर्य, चन्द्र तथा स्थावर और जंगम के आदि हैं। पृथ्वी, अग्नि, आकाश जल आप ही हैं। सहस्त्रों रूपों से आपने समस्त जगत् को व्याप्त किया।' (वामनपुराण आठवाँ अध्याय) स्पष्ट ही 'वामनपुराण' में विष्णु को परमेश्वर के रूप में स्वीकार किया गया है।

भगवान् विष्णु के नक्षत्र-शरीर का, उसके 'नक्षत्र पुरुष' रूप का भी वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है जो उसकी महिमा का सूचक है। देवर्षि नारद को पुलस्त्य ऋषि बताते हैं कि **मूल** नक्षत्र भगवान् विष्णु के दोनों चरणों, **रोहिणी** नक्षत्र दोनों जंघाओं एवं **अश्विनी** नक्षत्र दोनों घुटनों का रूप धारण करके स्थित हैं। **पूर्वाषाढ़ा** और **उत्तराषाढ़ा** नाम के दो नक्षत्र वासुदेव के दोनों ऊरुओं में, **पूर्वाफाल्गुनी** तथा **उत्तरफाल्गुनी** नाम वाले दोनों नक्षत्र गुह्य प्रदेश में और **कृत्तिका** नक्षत्र कटि भाग में स्थित है। **पूर्वाभाद्रपदा** तथा **उत्तराभाद्रपदा** भगवान् के दोनों पार्श्वों में, **रेवती** दोनों कुक्षियों में, **अनुराधा** हृदय में, **धनिष्ठा नक्षत्र** पृष्ठदेश में स्थित है। दोनों भुजाओं के स्थान में **विशाखा** नक्षत्र है। **हस्त** नक्षत्र को भगवान् के दोनों हाथ कहा गया है। **पुनर्वसु** नक्षत्र भगवान् की अंगुलियाँ और **आश्लेषा नक्षत्र** उनके नख हैं। ग्रीवा में **ज्येष्ठा**, कानों में **श्रवण** तथा मुख में **पुष्य** नक्षत्र स्थित है। दाँतों का **स्वाति नक्षत्र** कहा गया है। **शतभिषा**

नक्षत्र दोनों हनुएँ तथा **मघा** का नासिका कहा गया है। नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु के दोनों नेत्रों में **मृगशिरा** नक्षत्र का निवास है। **मित्रा** ललाट में, **भरणी** सिर में तथा **आर्द्रा** नक्षत्र केश में रहता है। यह भगवान् विष्णु का नक्षत्र शरीर है। नक्षत्र पुरुष जनार्दन की अर्चना कर रेवन्त नामक पुत्र प्राप्त किया था। नक्षत्रांग जनार्दन की पूजा करके रम्भा ने श्रेष्ठ रूप, मेनका ने वाणी की मधुरता, चन्द्र ने उत्तम कान्ति तथा पुरूरवा ने राज्य प्राप्त किया था। पुलस्त्य जी बताते हैं कि इस प्रकार जिसने नक्षत्र पुरुष भगवान् विष्णु की पूजा की उसने अपने मनोरथों की भली-भाँति पूर्ति कर ली।

'विष्णु पंजर स्तोत्र' के नाम से 'वामनपुराण' में दो स्तोत्र हैं जो विष्णु की महिमा एवं भक्ति भावना के स्पष्ट सूचक हैं। इन्हें ही 'कवच' भी कहा जाता है, जिनमें विष्णु भगवान् से भिन्न-भिन्न अंगों की रक्षा की प्रार्थना की गई है। ग्राह से गज की रक्षा करने वाले भगवान् विष्णु की महिमा का वर्णन 'गजेन्द्र मोक्षस्तोत्र' में प्रभावशाली रूप में वर्णित है। 'विष्णु पंजर स्तोत्र' में की गई प्रार्थना के कुछ अंश यहाँ उद्धृत हैं—पूर्व दिशा में चक्रधारण करने वाले विष्णु, दक्षिण दिशा में गदाधारी विष्णु, पश्चिम दिशा में शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले विष्णु और उत्तर दिशा में खड्ग धारण करने वाले विष्णु मेरी रक्षा करें। दिशाओं के कोणों में हृषीकेश, उन दिशाओं और कोणों के मध्य अवशिष्ट स्थान में जनार्दन, भूमि में वराहरूप धारण करने वाले हरि एवं आकाश में नृसिंह भगवान् मेरी रक्षा करें। ....जनार्दन हरि मेरे पीछे-आगे, दायें-बाएँ एवं दिशाओं के कोणों (अग्निकोण, नैऋत्यकोण, वायव्यकोण, ईशानकोण) में स्थित रहें।

(अ. ८५)

विष्णु भगवान् से सम्बन्धित दान का विस्तृत वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है। किस मास में किस तिथि विशेष को विष्णु भगवान् के निमित्त क्या दान करना चाहिए, इसका विवरण दिया गया है। वर्ष के बारह महीनों में विष्णु भगवान् की अलग-अलग नामों से पूजा-अर्चना होती है। 'संकल्प' आदि के समय उन्हीं नामों का प्रयोग किया जाता है। माघ मास में विष्णु भगवान् का नाम माधव, फाल्गुन में गोविन्द, चैत्र में विष्णु, वैशाख में मधुसूदन, ज्येष्ठ में त्रिविक्रम,

आषाढ़ में वामन, श्रावण में श्रीधर, भाद्रपद में हृषीकेश, आश्विन में पद्मनाभ, कार्तिक में दामोदर, अगहन में केशव और पौष में नारायण। इन मासों में विष्णु भगवान् की पूजा के विधि-विधान का भी वर्णन 'वामनपुराण' में दिया गया है। भगवान् के किस नाम से पूजन में कौन-सा पुष्पों का उपयोग होता है, इसका वर्णन भी 'वामनपुराण' में हुआ है। विष्णु भगवान् के साथ-साथ उनकी अर्द्धांगिनी लक्ष्मी के भिन्न-भिन्न रूपों की विस्तृत चर्चा हुई है।

विष्णु-मन्दिरों के निर्माण का महत्त्व तथा मन्दिर के लेपन की महत्ता का भी वर्णन 'वामनपुराण' में विस्तृत रूप में हुआ है। महाराज ज्यामघ के आख्यान के माध्यम से विष्णु मन्दिर-निर्माण के माहात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। विष्णु-पूजा से सम्बन्धित अनेक तीर्थों का विस्तृत वर्णन भी किया गया है जो वस्तुतः विष्णु-माहात्म्य का ही सूचक है। अवन्ती, उत्तरकुरु कुब्जाग्र, कुरुक्षेत्र केदार, क्रौञ्चद्वीप, कौशिकी, गया, दशाश्वमेध, नर्मदा, नैमिष, प्रयागराज, बदरिकाश्रम, मागधारण्य, मानसतीर्थ, वाराह वामनक, वाराणसी तथा हस्तिनापुर विष्णु पूजन के प्रमुख तीर्थ हैं। और भी अनेक तीर्थ विष्णु-महिमा से सम्बन्धित हैं।

विष्णु-भक्ति का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन कई स्तोत्रों में हुआ है। हम यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। भक्तवर प्रह्लाद का कथन है—

भव जलधि गतानां द्वन्द्व वाताहतानां
सुत दुहितृ कलत्र त्राणभारार्दितानाम्।
विषमविषय तोये मज्जतामप्लवानां
भवति शरणमेको विष्णुपोतो नाराणाम्॥ (९३/२८)

संसार रूपी अगाध समुद्र में डूबे हुए, द्वन्द्वरूपी वायु से आहत, पुत्र, कन्या, पत्नी आदि की रक्षा के भार से दुःखी, नौका के बिना भयंकर विषय-रूपी जल में डूबते हुए मनुष्यों के लिए विष्णु रूप नौका ही एकमात्र सहारा होता है।

सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्।
तावेव केवलं श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ॥
नूनं न तौ करौ प्रोक्तौ वृक्षशाखाग्र पल्लवौ।

न यौ पूजियितुं शक्तौ हरि पादाम्बुजद्वयम्॥
नूनं तत्कण्ठ शालूकमथवा प्रतिजिविह्का।
रोगो वाऽन्यो न सा जिह्वा या न व्यक्ति हरेरगुणान।

(९३/३२-३४)

वही जिह्वा है जो हरि का गुणगान करती है। वही चित्त है जो उनमें लीन है। वे ही हाथ प्रशंसा के योग्य हैं जो उनकी अर्चना करते है। जो हाथ श्री हरि के दोनों चरण-कमलों की अर्चना नहीं करते, वे हाथ नहीं हैं अपितु वृक्ष की शाखा में लगे हुए आगे के पल्लव हैं। जो जिह्वा हरि के गुणों का वर्णन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं, अपितु कण्ठशालूक—जिह्वा से युक्त मेंढक का कण्ठ (केवल दिखाने के लिए निकम्मी जीभ) अथवा अन्य कोई रोग है।

'वामनपुराण' में विष्णु भगवान् की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि श्रद्धापूर्वक विष्णु के चरण-कमल का अर्चन न करने वाला मनुष्य जीता हुआ भी मरे के समान है और बन्धुजनों के लिए शोचनीय है। इसके विपरीत विष्णुभक्त व्यक्ति का यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते—*ये विष्णुभक्ताः पुरुषाः पृथिव्यां यमस्य ते निविर्षया भवन्ति।* मृत्यु लोक में विष्णु भक्त व्यक्ति यम के शासन-विषय से बाहर हैं। अनन्य मन से श्रद्धापूर्वक केशव को नमन करने वाले मनुष्य पवित्र एवं तीर्थ-स्वरूप होते हैं।

उपर्युक्त संक्षिप्त चर्चा से स्पष्ट है कि 'वामनपुराण' में विष्णु की महिमा का प्रभावशाली रूप में वर्णन किया गया है।

●●

१३ दैत्य वंश-परिचय

'वामनपुराण' में दैत्य वंशीय अनेक राजाओं, योद्धाओं, शूरवीरों, दानवीरों, भक्तों का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया गया है। दैत्य वंश के इन राजाओं-महाराजाओं के गुणों एवं पराक्रम आदि का मार्मिक रूप में वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है। दैत्यों की अपनी संस्कृति, उनके आचार-विचार तथा वैष्णव-संस्कृति के साथ उसके समन्वय का वर्णन 'वामनपुराण' की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है।'देबासुरसंग्राम' के रूप में भारतवर्ष के अध्यात्म चिन्तकों ने दैत्यों को तामसिक शक्ति का प्रतीक मानकर देव-शक्ति या सात्त्विक शक्तियों के संघर्ष के रूप में ये कथाएँ उपलब्ध हैं। पुराणों में कल्पना का आश्रय लेकर बड़े-बड़े आख्यान प्रस्तुत किये गये हैं। हम यहाँ दैत्य वंश से सम्बन्धित उन सभी व्यक्तियों का संक्षेप में वर्णन कर रहे हैं जिनकी चर्चा 'वामनपुराण' में हुई है। प्रजापति कश्यप की दो पत्नियाँ थीं—दिति और दनु। इनमें से दिति की सन्तान दैत्य कहलाई तथा दनु की सन्तान दानव रूप में विख्यात हुई। दिति के दो पुत्र थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। यहाँ संक्षेप में इनके सम्बन्ध में परिचय दिया जा रहा है।

हिरण्यकशिपु

दैत्य वंश का यह राजा बहुत ही पराक्रमी एवं बलवान् था। इसने देवताओं को पराजित करके स्वयं स्वर्ग के राज्य-पद को प्राप्त कर लिया और इन्द्र कहलाने लगा। यह धर्म-विरोधी था। इसके अत्याचारों को देखकर, देवताओं की प्रार्थना पर विष्णु भगवान् ने नृसिंह-रूप धारण कर अपने नखों से इसे विदीर्ण कर दिया। इसके पुत्र का नाम प्रह्लाद था।

हिरण्याक्ष

यह हिरण्यकशिपु का भाई था। इसका कोई पुत्र न होने से यह बहुत दु:खी रहता था। पुत्र-प्राप्ति के लिए हिरण्याक्ष ने भगवान् शंकर की आराधना की। शंकर भगवान् की कृपा से इसे पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका

नाम अन्धक रखा गया। 'वामनपुराण' में अन्धक के जन्म का वृत्तान्त एक कथा के रूप में दिया गया है। एक समय जब शंकर भगवान् ध्यान में मग्न थे तो उमा ने हास-परिहास के रूप में उनके तीनों नेत्र बंद कर दिये। उससे अन्धकार-स्वरूप तम उत्पन्न हुआ। इस तम को शंकर ने हिरण्याक्ष को पुत्र-रूप में दे दिया जो अन्धक के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

प्रह्लाद

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है प्रह्लाद हिरण्यकशिपु का पुत्र था। हिरण्यकशिपु की मृत्यु के पश्चात् प्रह्लाद ही दैत्य वंश के राजा बने और इन्हें राज्य-पद पर अभिषिक्त किया गया। प्रह्लाद बहुत धार्मिक वृत्ति का दैत्य था। वह ब्राह्मणों-देवताओं की पूजा करता था। इसके राज्य में चारों वर्णों के लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। 'वामनपुराण' में प्रह्लाद की तीर्थ-यात्राओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक बार च्यवन ऋषि नर्मदा में स्नान करने अकुलीश्वर तीर्थ गये। वहाँ एक सर्प ने उन्हें पकड़ लिया और उन्हें नाग कन्याओं द्वारा पाताललोक में ले जाया गया। पाताल-लोक के अधिपति प्रह्लाद ने च्यवन ऋषि की पूजा-अर्चना की तथा पृथ्वी लोक के तीर्थों के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट की। च्यवन ऋषि ने प्रह्लाद को तीर्थों का परिचय दिया। प्रह्लाद की दो तीर्थ-यात्राओं का विस्तृत वर्णन 'वामनपुराण' में किया गया है जिनसे इनकी भक्ति-भावना, दानशीलता, तितिक्षा (कष्ट सहने की शक्ति) का ज्ञान होता है। प्रह्लाद एक उच्चकोटि के भक्त तो थे ही, वह एक वीर पुरुष भी थे। वह राजनीति तथा धर्म के उपदेशक भी थे। प्रह्लाद ने अपने पौत्र को राजनीति का तथा धुन्धु नामक दानव को धर्म का उपदेश दिया था। प्रह्लाद एक परम वैष्णव भक्त थे।

अन्धकासुर

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है भगवान् शंकर की कृपा से हिरण्याक्ष को जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसी का नाम अन्धक था। वह प्रह्लाद का चचेरा भाई था। प्रह्लाद ने उसे राज्य-पद पर अभिषिक्त किया था। राज्य-पद ग्रहण करने के पश्चात् इसने भगवान् शंकर की आराधना की। भगवान् शंकर ने प्रसन्न होकर

अन्धक को अनेक वरदान दिये। अन्धक ने जो वर माँगे थे—वे इस प्रकार थे—'सुर, सिद्ध और पन्नगों द्वारा मैं न कभी जीता जाऊँ और न कभी मारा जाऊँ। अग्नि के द्वारा मुझे कोई जला न सके, पानी के द्वारा मुझे कोई डुबा न सके।' शुक्राचार्य को अन्धकासुर ने अपना पुरोहित बनाया।

तत्पश्चात् पृथ्वी के समस्त राजाओं के जीतने के उपरान्त अन्धकासुर ने देवों को भी पराजित कर दिया और वह स्वयं स्वर्ग का राजा बन गया। इसके पश्चात् अन्धकासुर की इच्छाएँ और भी अधिक जाग उठीं। वह शिव-प्रिया गौरी को पाने की इच्छा करने लगा। प्रह्लाद ने उसे इस दुष्कर्म से विरत करने का उपदेश दिया, किन्तु अन्धक ने इस उपदेश पर ध्यान नहीं दिया। उसने मन्दराचल पर अपने दूत शम्बर को भेजा और गौरी को दे देने का अनुरोध किया। शंकर भगवान् ने अन्धक एवं उसके दूत का तिरस्कार किया। परिणामत: शंकर और अन्धक में भीषण संग्राम हुआ। अन्धक पराजित हो गया, किन्तु शंकर की स्तुति करने से उसे जीवन-दान मिला। शंकर ने उसे अपने 'गणों' में स्थान दे दिया और यह भृंगी गण के रूप में जाना गया।

विरोचन

यह भक्तवर प्रह्लाद का पुत्र था। उसने वरुण के साथ युद्ध किया था। वरुण के साथ विरोचन के युद्ध का बहुत ही विस्तृत एवं प्रभावशाली वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है। विरोचन ने अन्धक की ओर से शंकर के गणों से भी युद्ध किया था, जिसका उल्लेख 'वामनपुराण' में हुआ है। इसके पुत्र का नाम बलि था।

बलि

प्रह्लाद के पौत्र तथा विरोचन के पुत्र बलि के जीवन-वृत्त की विस्तृत जानकारी 'वामनपुराण' में प्रस्तुत की गई है। बलि के राज्य-काल में देवासुर संग्राम की घटना घटित हुई। बलि ने देवों की सेना को ध्वस्त कर दिया और इन्द्र का सिंहासन प्राप्त कर लिया। बलि को प्रह्लाद के द्वारा राजनीति का उपदेश दिये जाने का भी वर्णन 'वामनपुराण' में किया गया है। बलि ने धर्मपूर्वक राज्य-संचालन किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि बलि के राज्य में सुख एवं समृद्धि

का साम्राज्य छा गया। दैत्यराज बलि ने कुरुक्षेत्र में अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। शुक्राचार्य ने उस यज्ञ में पुरोहित का कर्म सम्पादित किया। वामन-रूपधारी भगवान् वासुदेव में इस यज्ञ में उपस्थित होकर बलि से तीन पग भूमि दान-रूप में माँगी। बलि ने क्योंकि तीन पग भूमि देने का संकल्प किया था अत: उन्होंने वामन रूप धारी ब्राह्मण को 'तथास्तु' कहा। भगवान् वामन ने तीन पगों में सम्पूर्ण त्रैलोक्य को नाप लिया और बलि को बाँधकर पाताल लोक भेज दिया। बलि पाताल-लोक में विश्वकर्मा द्वारा एक भव्य प्रासाद बनवा कर अपनी धर्म पत्नी विन्ध्यावली के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। बलि ने वहाँ केशव का मन्दिर भी बनवाया और पति-पत्नी दोनों मिलकर पूजा-उपासना में लगे रहते थे। इस प्रकार दैत्य राज बलि को 'वामनपुराण' में दानवीर तथा धर्मात्मा व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रह्लाद का प्रभाव इसके चरित्र पर स्पष्ट था।

बाणासुर—यह बलि का बेटा था। महिषासुर तथा तारकासुर के द्वारा देवताओं के साथ किये गये युद्ध में बाणासुर ने भाग लिया था और अपनी शूरवीरता का प्रदर्शन किया था। बाणासुर ने शंकर भगवान् के गण नेगमेय का साथ भी युद्ध में पराक्रम दिखाया था। बलि के द्वारा स्वर्ग के राज्य प्राप्त करने पर बाणासुर को यम के पद पर नियुक्त किया गया था। बाणासुर ने बलि का राज्य छीन लेने पर भगवान् वामन से वाद-विवाद भी किया था। भगवान् वामन को अपने तर्कों से पराजित करने का प्रयत्न बाणासुर द्वारा किया गया था।

पुर 'वामनपुराण' में पुर को बाणासुर का पुत्र बताया गया है। इसने आठ वसुओं के साथ युद्ध किया था। देवों के युद्ध में इन्द्र के हाथों पुर मारा गया था। पुर को मारने के कारण इन्द्र का नाम 'पुरन्दर' पड़ा था। संक्षेप में 'बामनपुराण' में इन्हीं मुख्य दैत्यों का वर्णन किया गया है।

●

१४ दानव-वंश-वर्णन

महर्षि कश्यप की दूसरी पत्नी का नाम दनु था। दनु की बहुत सन्तान हुई—ये सब दानव कहलाये। हम यहाँ संक्षेप में इस दानव-कुल का परिचय दे रहे हैं।
शुम्भ-यह कश्यप-दनु का सबसे बड़ा पुत्र था जो बहुत ही शक्ति सम्पन्न, शूरवीर था। अपने छोटे भाई निशुम्भ के मरने के पश्चात् क्रोधावेश में भरकर, हाथी पर सवार होकर यह युद्ध-भूमि में आया। देवी-दुर्गा के वाणों से यह पृथ्वी पर गिरकर मर गया।

निशुम्भ—शुम्भका छोटा भाई था। यह भगवती कात्यायनी के रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनकर, उसे प्राप्त करने तथा पत्नी बनाने का इच्छुक था। कात्यायनी ने कहा कि जो उसे युद्ध में पराजित करेगा, वहीं उसका पति बनेगा। निशुम्भ ने भगवती कात्यायनी से युद्ध करने का निश्चय किया। युद्ध-भूमि में भगवती के मोहक सौन्दर्य को देखकर वह चकित रह गया। दोनों में भयंकर संग्राम हुआ। अन्तत: निशुम्भ देवी कात्यायनी के द्वारा मारा गया।

नमुचि—यह भी एक शूरवीर दानव था। यह शुम्भ का छोटा भाई था। इन्द्र ने नमुचि के वध का संकल्प किया हुआ था किन्तु नमुचि सूर्य के रूप में छिप गया जिससे इन्द्र उसका वध न कर सका। इन्द्र ने इसके साथ सन्धि कर ली और इसे अवध्य होने का वरदान भी दिया। स्वयं को अवध्य जानकर नमुचि रथ को छोड़कर पाताल लोक में चला गया। वहाँ समुद्र फेन से अपने अंगों का मार्जन करने से उसके वे अंग टूटते-गिरते गये और वह मृत्यु को प्राप्त हो गया।

मुर—यह कश्यप का औरस पुत्र था। इसने अनेक वर्षों तक कठोर तपस्या की और भगवान् ब्रह्मा को अपनी आराधना से प्रसन्न किया। सन्तुष्ट ब्रह्माजी ने इसे वर माँगने को कहा। उसने यह वर माँगा कि संग्राम में अमर व्यक्ति भी मेरे हाथ के स्पर्श से मृत्यु को प्राप्त हो जाए। ब्रह्मा जी ने कहा—'तथास्तु' (ऐसा ही हो)। वरदान मिलते ही वह अमरावती पहुँचा और युद्ध करने के लिए देवराज इन्द्र को ललकारा। देवताओं सहित इन्द्र ने वहाँ से पलायन किया और यमुनातट

पर एक नगर बसा कर वहाँ रहने लगा। अमरावती पर मुर का आधिपत्य हो गया। वह वहाँ रहकर स्वर्ग के सुखों का भोग करने लगा। मुर ने पृथ्वी पर जाकर रघु को युद्ध के लिए ललकारा। रघु ने उसे यमराज से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। यमराज विष्णु भगवान् के पास पहुँचे और मुर के अत्याचारों का वर्णन करके उसे नष्ट करने की प्रार्थना की। विष्णु भगवान् ने मुर को अपने पास बुला लिया। मुर विष्णु लोक में जा पहुँचा। विष्णु भगवान् ने उससे पूछा—'तुम यहाँ क्यों आये हो?' उसने कहा—'मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया हूँ।' विष्णु बोले 'तुम्हारा हृदय तो भय के मारे ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा है, तुम कातर हो रहे हो। ऐसे व्यक्ति से हम युद्ध नहीं करते।' विष्णु भगवान् के ऐसे कहने पर मुर ने अपने हृदय पर हाथ रखा (हृदय का स्पर्श किया) और पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गई क्योंकि उसने ब्रह्मा से यही माँगा था कि युद्ध में मैं जिसका स्पर्श करूँ, वहीं नष्ट हो जाए।

धुन्धु—यह भी कश्यप का ही पुत्र था। यह भी बहुत बड़ा शूरवीर तथा योद्धा था। तपस्या के द्वारा इसने भी ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया था और वरदान माँगा था कि मैं इन्द्रादि देवताओं से कभी परास्त न होऊँ। देवताओं को पराजित करके इसने इन्द्र-पद को प्राप्त कर लिया। फिर उसने शुक्राचार्य के कहने पर अश्वमेध-यज्ञ किया। जब यज्ञ आरम्भ हुआ तो देवता विष्णु के पास यह प्रार्थना करने गये कि धुन्धु के यज्ञ को विध्वंस किया जाए। भगवान् विष्णु यह जानते थे कि धुन्धु अवध्य है, उन्होंने एक उपाय किया। यज्ञ-भूमि के पास ही बहने वाली देविका नदी में वह (विष्णु भगवान्) बौने के रूप में डूबते-उतराते-दिखाई पड़े। ऋषियों ने जब उस बौने को बाहर निकाला और डूबने का कारण पूछा तो बौने ने बताया कि मेरे बड़े भाई ने पैतृक सम्पत्ति में मेरा भाग न देकर, मुझे इस नदी में फेंक दिया है। ऋषि उस वामन-रूपी ब्राह्मण को यज्ञ में ले गये। तब धुन्धु ने उससे धन माँगने की प्रार्थना की। ब्राह्मण ने कहा—'मुझे धन नहीं चाहिए, मुझे केवल तीन पग पृथ्वी चाहिए।' धुन्धु ने तीन पग पृथ्वी देना स्वीकार कर लिया। तब उस वामन ने त्रिविक्रम-रूप धारण किया और पहले चरण में सागर, पर्वत और नगरों सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का हरण कर लिया। दूसरे चरण में स्वर्ग, मर्त्य, चन्द्र,

सूर्य, नक्षत्रों सहित आकाश को नाप लिया तथा तीसरे चरण से धुन्धु के सिर पर प्रहार किया जिससे पृथ्वी तीस योजन नीचे धँस गई। उस दानव को शीघ्रता से उठाकर गड्ढे में डाल दिया और तुरन्त धूलि-वर्षा से उस गड्ढे को भर दिया। भगवान् विष्णु की कृपा से इन्द्र ने अपना राज्य पुन: प्राप्त कर लिया।

स्पष्ट ही 'वामन-पुराण' में भगवान् विष्णु के दो बार वामन-रूप धारण करने का वर्णन हुआ है। दैत्य राज बलि से भी इसी प्रकार तीन-पग भूमि प्राप्त करने का विवरण अन्यत्र दिया जा चुका है।

उपर्युक्त दानवों के अतिरिक्त 'वामन-पुराण' में कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण दानवों के वृत्तान्त भी दिये गये हैं जिनकी वंश-परम्परा वर्णित नहीं है। इनमें से करम्भ के पुत्र, अत्यन्त बलशाली, शूरवीर महिषासुर का वर्णन प्रमुख है। यह नभर का भाई था तथा देवी भगवती कातयायनी द्वारा मारा गया था। एक अन्य महिषासुर का वृत्तान्त भी दिया गया है जो तारकासुर का भाई था और जिसका वध कार्तिकेय के द्वारा किया गया था। महिषासुर नामधारी इन दो दानवों के अतिरिक्त 'वामनपुराण' में नभर, दानव तथा उसके युद्ध का, रक्तबीज़ तथा उसके संग्राम का प्रभावशाली वर्णन हुआ है। विद्युत्केशी के पुत्र सुकेशी के चरित्र का वर्णन तथा जीवन-वृत्तान्त तो इस पुराण में अत्यन्त विस्तृत-रूप में वर्णित है। सुकेशी एक धर्म-परायण राजा के रूप में वर्णित है।

इनके अतिरिक्त बलशाली दानव धूम्रलोचन, भयानक दानव कालनेमि तथा महिषासुर के दूत—चण्ड-मुण्ड और द्वितीय महिषासुर के भाई तारकासुर का भी वृत्तान्त वामनपुराण में दिया गया है। इन दानवों में से कुछ तो कार्तिकेय के द्वारे मारे जाते हैं और कुछ का वध भगवती दुर्गा के द्वारा किया गया वर्णित है। दानवों का निवास-स्थान पाताललोक में बताया गया है।

●●

१५ शिव-पार्वती-प्रसंग

'वामनपुराण' में शिव और पार्वती का आख्यान अनेक अध्यायों में विस्तार-पूर्वक दिया गया है। इसके साथ ही शिव के आध्यात्मिक-तात्त्विक रूप को भी स्पष्ट किया गया है तथा शैव मत के दार्शनिक सिद्धान्तों का भी सांकेतिक-सा वर्णन किया गया है। यद्यपि 'वामनपुराण' में प्रमुख-रूप से भगवान् विष्णु के अवतार वामन की महिमा का ही वर्णन है तथापि शिव के सम्बन्ध में भी प्रचुर वर्णन हुआ है।

शरदागम होने पर शंकर भगवान् के मन्दर पर्वत पर जाने और प्रजापति दक्ष के यज्ञ के वर्णन के साथ शिव-पार्वती प्रसंग आरम्भ होता है। भगवान् शंकर के ब्रह्म-हत्या के पाप से छूटने के लिए तीर्थ-यात्रा करने, बदरिकाश्रम में नारायण की स्तुति करने तथा वाराणसी में ब्रह्म-हत्या के पाप से मुक्ति मिलने और शंकर के 'कपाली' नाम पड़ने का वर्णन किया गया है। विजया की मौसी सती से दक्ष-यज्ञ की वार्त्ता में सती (शिव-पत्नी) के प्राण-त्याग की सूचना पाकर भगवान् शिव को क्रोध आ जाता है और शिव के गणों द्वारा दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया जाता है। यहाँ पर भगवान् शिव के काल-रूप का वर्णन करते हुए, राशियों के साथ शिव-रूप की चर्चा भी की गई है। मेष राशि को भगवान् शंकर का सिर माना गया है। वृषराशि को कालरूपी महादेव का मुख माना गया है। मिथुन राशि को शंकर की दोनों भुजाएँ कहा गया है। सिंह राशि शंकर का हृदय कही गई है। इस प्रकार सभी बारह राशियों को शंकर के सम्पूर्ण शरीर का रूप मानने की एक विलक्षण कल्पना की गई है। तुला राशि को भगवान् शंकर की नाभि माना गया है और मीन राशि को भगवान शिव के दोनों चरण कहा गया है। शिव सम्बन्धी उपर्युक्त वर्णन 'वामनपुराण' के अध्याय २ से अध्याय ५ तक विस्तारपूर्वक हुआ है। इसके छठे अध्याय में भगवान् शिव के कई वृत्तान्त वर्णित हैं।

पुलस्त्य जी नारद को बताते हैं कि दक्ष-पुत्री सती के प्राण-परित्याग करने

पर शिव जी दक्ष का यज्ञ ध्वंस कर, जहाँ-तहाँ विचरण करने लगे। स्त्री-रहित शिव जी पर कामदेव ने 'उन्मादन' नामक अस्त्र से प्रहार किया जिससे शिव जी कामोन्मत्त होकर वनों में, सरोवरों में घूमने लगे। वे सती को स्मरण कर अत्यन्त अशान्त चित्त हो उठे। अशान्त एवं काम-पीड़ित शिव जी यमुना नदी में कूद पड़े उनके द्वारा उस जल में निमज्जन करने पर यमुना जी का जल काला हो गया। तत्पश्चात् नदी-तटों, बावड़ियों, कमल वनों, काननों, पर्वत-शृंगों पर स्वेच्छापूर्वक विहार करने पर भी शिव कहीं भी शान्ति नहीं प्राप्त कर सके—

क्षणं गायति देवर्षे क्षणं रोदिति शंकरः।
क्षणं ध्यायति तन्वङ्गीं दक्षकन्यां मनोरमा॥ (अ. ६/३४)

देवर्षे! वे कभी गाते, कभी रोते और कभी कृशांगी सुन्दरी सती का ध्यान करते। इतना ही नहीं शिव स्वप्न में भी दक्ष-कन्या का ध्यान करते रहते थे। शिव जी के 'विलाप' का बहुत ही प्रभावशाली चित्रण 'वामनपुराण' में हुआ है। कुबेर-पुत्र (यक्ष) पाञ्चालिक के द्वारा कामदेव के शस्त्रास्त्रों को नष्ट कर देने से शंकर का चित्त शान्त होता है। भगवान् शिव उस पाञ्चालिक को आशीर्वाद भी देते हैं। पाञ्चालिक के चले जाने पर भगवान् शंकर भी विन्ध्य पर्वत पर आ गये। वहाँ पर कामदेव को पुनः अपना पीछा करते हुए देखकर महादेव 'दारुवन' में चले गये जहाँ ऋषिगण अपनी पत्नियों सहित निवास करते थे।

तत्पश्चात् शिवजी के दारूवन में लिंग के गिरने, ऋषि-पत्नियों के कामातुर होने, चराचर के विक्षुब्ध होने पर देवताओं सहित ब्रह्मा-विष्णु द्वारा प्रार्थना किये जाने का वर्णन किया गया है। भगवान् शंकर से वे प्रार्थना करते हैं—

भवतः पातिंत लिंगं यदेतद भुवि शंकर।
एतत् प्रगृह्यतां भूय अतो देव स्तुवावहै।। (अ. ६/८३)

ब्रह्मा-विष्णु बोले—'शिवजी! पृथ्वी पर आपका जो यह लिंग गिराया गया है, उसे पुनः आप ग्रहण करें। इसीलिए हम आपकी स्तुति कर रहे हैं।' इनकी प्रार्थना को सुनकर शिवजी बोले 'यदि सभी देवता मेरे लिंग की पूजा करना स्वीकार करें, तभी मैं इसे पुनः ग्रहण करूँगा, अन्यथा किसी प्रकार भी इसे ग्रहण नहीं करूँगा।' भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा सभी देवता शिवजी के लिंग की पूजा

को स्वीकार करते हैं। ब्रह्मा जी शिवोपासना के चार सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा करते हैं और ब्रह्म लोक को चले जाते हैं। तत्पश्चात् पुनः कामदेव तथा शिव में संघर्ष होता है। भगवान् शिव उसे पैर से लेकर कटि तक दग्ध कर देते हैं। अपने चरणों को जलते हुए देखकर कामदेव अपने धनुष को दूर फेंक देते हैं। इससे धनुष के पाँच टुकड़े हो गये। धनुष का सुवर्णयुक्त मुठबन्ध स्रगन्धिपूर्ण चम्पक वृक्ष बन गया। उस धनुष का हीरे से जटित नाह स्थान गिरकर मौलेसरी (बकुल) वृक्ष में परिणत हो गया। इन्द्रनील से सुशोभित उसकी सुन्दर कोटि भृंगों से विभूषित सुन्दर पाटल (गुलाब) के रूप में बदल गया। धनुष-नाह के ऊपर का भाग चमेली का पुष्प बन गया और मुष्टि के ऊपर और दोनों कोटियों के नीचे वाले स्थान के टूटने से वह स्थान मालती (मल्लिका) बन गई। इसके अनन्तर कामदेव को भस्म कर, अपने शरीर को संयत कर समर्थ अविनाशी शिव पुण्य की कामना से हिमालय पर तपस्या करने चले गये।

इसके पश्चात् 'वामनपुराण' के ५१वें अध्याय से लेकर ५८वें अध्याय तक पार्वती-प्रसंग के माध्यम से शिव-पार्वती विवाह आदि का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन किया गया है। पर्वत (हिमालय) की पत्नी मेना को रूप और गुण से सम्पन्न तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं और सुनाभ नाम से विख्यात पुत्र प्राप्त हुआ। इनकी बड़ी पुत्री का नाम 'रागिणी' और दूसरी का नाम 'कुटिला' था। मेना की तीसरी कन्या का नाम काली था। दोनों बड़ी कन्याएँ तपस्या में निरत हो गईं। जब तीसरी काली ने भी तपस्या करने का आग्रह किया तब उसकी माता मेना ने कहा—'उमा' (तुम तपस्या मत करो।)' इस प्रकार उस काली का नाम ही उमा हो गया। उमा ने शिव को प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की। इसकी तपस्या से समस्त देवगण कान्तिहीन हो गये। उधर महादेव भी घूमते हुए हिमालय के पास पहुँचे। पर्वतराज हिमालय ने महादेव को निमंत्रित किया और उनका बहुत सम्मान किया। शिव योग में लीन हो गये। उन्हें यह ज्ञात हो गया था कि उनकी प्रिय दक्ष-पुत्री सती ने पुनः हिमालय-पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया है और शिव को पति-रूप में पाने के लिए घोर तपस्या कर रही है।

तपस्या—निरत उमा के पास शिव ब्रह्मचारी के रूप में जाते हैं और अनेक

प्रश्नों से पार्वती की तपस्या के कारण को जानने का प्रयत्न करते हैं। शिव को पाने के लिए ब्रह्मचारी तपस्या को व्यर्थ बताते हैं तथा शिव की निन्दा भी करते हैं। शिव-निन्दा सुनकर उमा ने कहा—

मा मैवं वद भिक्षोत्वं हरः सर्वगुणाधिकः (अ. ५१/६५)

भिक्षुक! तुम ऐसी बात मत बोलो। शंकर सब गुणों में श्रेष्ठ हैं। वह स्पष्ट शब्दों में कहती है—

यादृशस्तादृशो वापि स मे नाथो भविष्यति (अ. ५१/६७)

वे जैसे-तैसे ही क्यों न हों, पर वे मेरे स्वामी होंगे। उमा की परीक्षा लेने के पश्चात् शिव ऋषियों की बात को स्मरण करके, उन्हें हिमवान् के यहाँ भेजते हैं। वे ऋषिगण हिमालय से उसकी पुत्री उमा की याचना करते हैं। हिमालय से स्वीकृति मिलते ही सप्तर्षि शिव जी को सूचित करते हैं। तत्पश्चात् उमा और शिव के विवाह का अत्यन्त विस्तृत वर्णन 'वामनपुराण' में किया गया है। विवाह-वर्णन का यह प्रसंग बहुत ही माधुर्य-पूर्ण तथा काव्यत्व से युक्त है। अष्टमूर्ति भगवान शंकर उमा सहित तथा अपने भूतगणों समेत मन्दर पर्वत पर रहने लगे। मन्दर पर्वत पर विश्वकर्मा द्वारा भगवान् शिव के लिए गृह-निर्माण किया गया जो भवन बहुत ही भव्य कलापूर्ण तथा वैभव सामग्री से भरा था। पार्वती-उमा कठोर तपस्या से ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त करती है जिससे उसके शरीर का कालापन समाप्त हो जाता है और वह सुवर्ण वर्ण के शरीर वाली हो जाती है। तत्पश्चात् पार्वती-शिव के महामोहनक (दीर्घ समय तक चलने वाला रति-कर्म) का और देवताओं की चिन्ता का वर्णन किया गया है। देवता उन्हें इस महामैथुन का परित्याग करने की प्रार्थना करते हैं। अग्नि के द्वारा शिव के तेज को धारण किया जाता है जिससे कार्तिकेय का जन्म होता है तथा पार्वती के शरीर की उबटन से गजानन की उत्पत्ति होती है। गजानन का नाम विनायक रखा जाता है। 'वामनपुराण' के ५७वें अध्याय में कार्तिकेय के जन्म की कथा विस्तार से वर्णित है। उसके छः मुखों और चतुर्मूर्ति होने के कारणों का भी वर्णन किया गया है। यही कार्तिकेय ही देवों की सेना का सेनापति होकर तारकासुर तथा महिषासुर का वध करते हैं। अट्ठावनवें अध्याय में युद्ध का वर्णन बहुत ही

ओजपूर्ण तथा प्रभावशाली बन पड़ा है। शिव-पार्वती के विवाह का प्रयोजन ही दैत्यों का विनाश करना था। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए कार्तिकेय का जन्म हुआ था। कार्तिकेय के स्कन्द, कुमार, गुह, महासेन तथा शारद्वत, ये भी नाम हैं।

तदनन्तर 'वामनपुराण' में शिवजी के पुन: तेज-प्राप्ति के लिए तपस्या करने तथा केदार तीर्थ की महिमा का वर्णन किया गया है।

शिव-पार्वती के इस आख्यान में अनेक अवसरों पर शिव के विराट् रूप का, शिव के प्रमुख आठ नामों का, शिव की साधना की पद्धति का, शिव तीर्थों का भी उल्लेख होता गया है। यह सारा कथानक बहुत ही रोचक, काव्यमय तथा मधुर है। युद्धों का वर्णन बहुत ओजस्वी है।

'दारुवन' में शिव के लिंग के गिरने की घटना की चाहे आध्यात्मिक व्याख्या की गई हो या इस घटना के ऐतिहासिक कारणों की मीमांसा की गई हो, परन्तु हमारे विचार में इस घटना का वर्णन सुरुचि पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। यह प्रसंग निश्चय ही अश्लील है। इससे किसी प्रकार का लोक-कल्याण नहीं होता। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि 'वामनपुराण' जैसे उच्चकोटि के साहित्यिक-काव्यमय पुराण में यह प्रकरण 'प्रक्षिप्त' है।

●●

१६ शक्ति : स्वरूप-महिमा

'वामनपुराण' के ५५-५६वें अध्याय में देवी की महिमा का, उसके स्वरूप का वर्णन किया गया है। मुख्य-रूप से दैत्यों-दानवों के साथ देवी के संग्राम तथा दैत्यों के विनाश में शक्ति की भूमिका का वर्णन इस पुराण में हुआ है। इसके साथ ही साँकेतिक रूप में शक्ति के तात्त्विक-आध्यात्मिक रूप का भी वर्णन 'वामन पुराण' में हुआ है। पुलस्त्य और नारद के संवाद-रूप में बहुत ही मार्मिक एवं प्रभावशाली आख्यान इस पुराण में दिया गया है। हम अत्यन्त संक्षेप में यहाँ इस विषय की चर्चा कर रहे हैं।

कश्यप की दनु नाम की पत्नी से तीन पुत्र थे—शुम्भ निशुम्भ और नमुचि। समुद्र फेन के स्पर्श से पाताललोक में नमुचि की मृत्यु हो गई। समुद्र फेन द्वारा नमुचि की मृत्यु वस्तुत: इन्द्र देव का षड्यन्त्र था जिसे जानकर नमुचि के दोनों भाई शुम्भ और निशुम्भ बहुत कुपित हुए। इन दोनों ने इन्द्र तथा देवताओं को पराजित कर दिया और उनके शस्त्रास्त्रों को भी इन्होंने छीन लिया। तब सब देवता पृथ्वी पर आ गये और उन लोगों ने रक्तबीज नाम के एक महान् असुर को देखा तो देवताओं ने उससे पूछा—आप कौन हैं ? उसने बताया कि वह रक्तबीज नाम का दैत्य है तथा महिषासुर का मन्त्री है। उसने यह भी देवताओं को बताया कि महिषासुर के दो अन्य मन्त्री चण्ड और मुण्ड देवी (महिषासुर मर्दिनी) के भय से जल में छिप गये हैं। महादेवी ने विन्ध्य पर्वत पर हमारे स्वामी महिषासुर को मार डाला है।

शुम्भ और निशुम्भ से भी रक्तबीज का परिचय होता है। वे दोनों अपनी-अपनी शक्ति एवं शूरवीरता का परिचय देते हैं और रक्तबीज को कहते हैं कि जिस देवी ने महिषासुर का वध किया है, हम दोनों अपनी सेनाओं को साथ लेकर उस देवी का विनाश करेंगे। इनकी बातचीत अभी चल ही रही थी कि महिषासुर के दोनों मन्त्री चण्ड और मुण्ड भी नर्मदा से बाहर आ गये, जिसके जल में वे दोनों छिपे हुए थे। रक्तबीज के द्वारा इन दोनों का शुम्भ और निशुम्भ से परिचय

कराया जाता है। रक्तबीज उन्हें यह भी बताता कि जिस देवी ने महिषासुर का वध किया है वह त्रैलोक्य का एक अभूतपूर्व रत्न है। मैं उस रत्न रूपा देवी से, इन दोनों की (शुम्भ + निशुम्भ) सहायता से विवाह करके उसके मान का मर्दन करूँगा। रक्तबीज की बात सुनकर चण्ड ने कहा—

न सम्यगुक्तं भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम्। (अ. ५५/२६)

आपका कहना उचित नहीं है, क्योंकि आप अभी उस रत्न के योग्य नहीं हैं। राजा ही रत्न के योग्य होता है—'**यः प्रभुः स्यात्सरत्नार्ह।**' अतः आप इस देवी के साथ शुम्भ के विवाह की योजना बनाइये। इस बात पर सभी की सहमति होने पर शुम्भ के द्वारा सुग्रीव नामक अपने मन्त्री को विन्ध्यवासिनी देवी के पास भेजा गया। सुग्रीव के द्वारा शुम्भ की बहुत प्रशंसा की गई। उसके बलपराक्रमों का विस्तृत वर्णन किया गया, किन्तु देवी ने उसे एक ही बात कहकर वापस भेज दिया—

यो मां विजयते युद्धे स भर्ता स्यान्महासुर। (अ. ५५/३६)

अर्थात् जो मुझे युद्ध में पराजित करेगा, वहीं मेरा पति होगा। सुग्रीव शुम्भ आदि को देवी के इस उत्तर से अवगत कराता है। क्रोध में भर कर शुम्भ अपने सहायक धूम्रलोचन को भेजता है कि वह जाकर देवी को पकड़ कर ले आए और उसके चरणों में उपस्थित करे। शुम्भ के साथ देवी कौशिकी का भीषण संग्राम होता है। विभावरी (कौशिकी) ने उस असुर (धूम्रलोचन) तथा उसकी सेना को भस्म कर दिया। यह दृश्य देखकर सारे संसार में हाहाकार मच गया। शुम्भ ने भी यह हाहाकार सुना। धूम्रलोचन के वध हो जाने के पश्चात् अब उसने चण्ड तथा मुण्ड तथा रुरु को युद्ध के लिए भेजा। इनकी सेना को तो सिंह ने ही नष्ट कर दिया। चण्ड तथा मुण्ड को नष्ट करने के लिए कौशिकी ने काली का रूप धारण किया जिसके गले में मुण्डमाला पड़ी हुई थी। काली ने अगणित योद्धाओं को युद्ध में मार डाला। दैत्य सेनापति रुरु ने देवी पर आक्रमण किया तो चण्डी-रूप-धारिणी देवी ने उस असुर के सिर पर आघात किया। वह मर कर जड़ से कटे हुए वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। रुरु का वध करने के कारण देवी को 'चण्डमारी' कहा गया। इसके पश्चात् चण्ड और मुण्ड को पकड़ने का प्रयत्न किया गया।

वे दोनों भयभीत होकर दक्षिण की ओर भाग गये। तब चण्डमारी गरुड़ के समान वेगवान् गदहे पर सवार होकर उनके पीछे दौड़ी। मार्ग में उसने यमराज के पौण्ड्र नामक महिष (भैंसा) को देखा। उस चण्डमारी ने उस महिष का सींग उखाड़ लिया और चण्ड-मुण्ड का पीछा करने लगी। तब वे दोनों दैत्य पृथ्वी को छोड़कर आकाश में चले गये। मार्ग में गरुड को भी देवी ने पराजित किया और आगे बढ़ती गई। इसके पश्चात् तुरन्त ही चण्डमारी चण्ड और मुण्ड के समीप पहुँच गई और उन्हें बाँध कर विन्ध्य पर्वत पर ले गई। चण्डमारी ने उन्हें देवी (कौशिकी) के सम्मुख उपस्थित किया। उसके पश्चात् प्रचण्ड दुर्गा ने चण्ड-मुण्ड को पकड़ लिया और कुपित होकर उन दोनों के सिरों को काट डाला। चण्ड और मुण्ड के सिरों को देवी ने आभूषण रूप में धारण किया जिससे वह संसार में 'चामुण्डा' नाम से प्रख्यात हुई। बचे-खुचे दैत्य सैनिक भागे हुए अपने नायक शुम्भ की शरण में गये।

पुलस्त्यमुनि नारद जी को बताते हैं कि शुम्भ को जब ज्ञात हुआ कि चण्ड और मुण्ड की युद्ध में मृत्यु हो गई है और उसके सैनिक भाग खड़े हुए हैं तब शुम्भ ने रक्तबीज को लड़ने के लिए भेजा। एक अत्यन्त विशाल दैत्य सेना को आते हुए देखकर देवी ने सिंह-गर्जना की। तब उस देवी के मुख से हंस पर बैठी हुई तथा अक्षमाला धारण किये हुए ब्रह्माणी उत्पन्न हो गई। उसके तुरन्त बाद त्रिशूलधारिणी तथा कुण्डल धारण किये हुए तीन नेत्रों वाली माहेश्वरी भी उत्पन्न हुई। फिर कौमारी, वैष्णवी, वराही, माहेन्द्री आदि देवियों ने देवी के भिन्न-भिन्न अंगों से उत्पन्न होकर उस महासंग्राम में भाग लिया। देवी के हृदय से नारसिंही, ने भी उत्पन्न होकर घोर गर्जना की। इस प्रकार चाण्डिका और रक्तबीज के युद्ध में देवी ने विभिन्न रूप धारण करके युद्ध में दैत्यों के छक्के छुड़ा दिये। भगवान् शिव भी अम्बिका की सहायता के लिए युद्धभूमि में पहुँच गये। देवी ने भगवान् महादेव को अपना दूत बनाकर शुम्भ-निशुम्भ के पास भेजा। भगवान् शिव ने उन दोनों दैत्यों को महादेवी शिवदूती का सन्देश कह सुनाया—'दुराचारियो! यदि तुम सब जीने की इच्छा करते हो तो सातवें (लोक) रसातल में चले जाओ। इन्द्र को स्वर्ग का राज्य वापस कर दो। देवताओं को कोई पीड़ा न हो। किसी के यज्ञ में कोई बाधा न हो, अन्यथा मैं तुम सबको अनायास ही मार डालूँगी।' शिव का सन्देश सुन कर वे दैत्य हँसने लगे और कात्यायनी देवी पर

उन्होंने आक्रमण कर दिया। दोनों ओर से शस्त्रास्त्रों के प्रहार होने लगे। भीषण संग्राम छिड़ गया। देवी के सभी रूपों ने अपनी-अपनी शक्ति का परिचय देते हुए दैत्यों का वध किया। महेश्वर ने भी उस युद्ध में असुर-संहार का कार्य किया। इस प्रकार देवी के बहुत-से रूपों से संहार किये जाते हुए दानव धराशायी होने लगे। अम्बिका देवी तथा चामुण्डा-देवी ने दैत्यों का रक्तपान आरम्भ कर दिया। असंख्य दैत्यों के नष्ट हो जाने पर अब निशुम्भ स्वयं देवी के सम्मुख उपस्थित हुआ। देवी कौशिकी और दैत्यराज निशुम्भ के मध्य विभिन्न शस्त्रास्त्रों से भयंकर युद्ध होने लगा। वीरता एवं पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए निशुम्भ ने बहुत समय तक युद्ध किया। अन्ततः देवी ने उन दैत्यों को नष्ट कर दिया। मृडानी (देवी) द्वारा उन दोनों देव-शत्रुओं के संहार की सूचना पाकर इन्द्र सहित सभी देवगण वहाँ उपस्थित हुए और विनयपूर्वक उन्होंने देवी की स्तुति की। (यह स्तुति हम परिशिष्ट में दे रहे हैं)। देवी ने देवताओं को बताया कि वह कब-कब किस-किस रूप में अवतरित होकर किस-किस दुष्ट का विनाश करेंगीं। इसके पश्चात् सभी को प्रणाम करके देवी स्वर्गलोक में चली गई।

उपर्युक्त विस्तृत आख्यान से देवी की शक्ति का बोध कराया गया है। असुर-संहार करने वाली इस देवी के विभिन्न स्वरूपों की चर्चा 'वामनपुराण' में हुई है। देवी के अम्बिका, कात्यायनी, काली, कौशिकी, चण्डमारी, चाण्डिका, चण्डी, चार्ममुण्डा, चामुण्डा, दुर्गा, नारायणी, भगवती, महेश्वरी, मृडानी, विन्ध्यवासिनी, शिवदूती, सनातनी आदि चौबीस रूपों का वर्णन 'वामनपुराण' में हुआ है। देवता शक्ति की स्तुति-आराधना करते हैं, उसकी महिमा का गायन करते हैं। भगवान् शिव भी देवी की सहायता करने के लिए उपस्थित होते हैं। इस प्रकार शक्ति की महिमा, शाक्त धर्म की महत्ता का वर्णन विस्तारपूर्वक 'वामनपुराण' में किया गया है। शक्ति सारे संसार की स्वामिनी है। वस्तुतः यह समूचा संसार ही भगवती का रूप माना गया है। 'वामनपुराण' में शक्ति-पूजा से सम्बन्धित प्रमुख तीर्थों-केन्द्रों की भी चर्चा की गई है। कुरुक्षेत्र के समीप कलसी तीर्थ, सरस्वती तट पर दुर्गा तीर्थ तथा मधुवटी तीर्थ का सम्बन्ध शक्ति-पूजा के स्थलों से हैं। निष्कर्ष यह है कि 'वामनपुराण' में वैष्णव, शैव तथा शक्ति, इन तीनों धर्म-सम्प्रदायों की महिमा का वर्णन किया गया है।

●●

१७ स्तोत्र (स्तुति) वर्णन

भगवान् या किसी देवी-देवता की स्तुति को स्तोत्र भी कहते हैं। स्तुति या स्तोत्र में सम्बद्ध देवी-देवता की महिमा का गायन, गुणों का वर्णन किया जाता है। स्तोत्रों में सम्बद्ध देव के स्वरूप का भी चित्रण किया जाता है। स्तुति करने वाला साधक अपने आराध्य की आराधना में अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है। स्तोत्रों में भक्तों के सुतीव्र भाव, उनकी संवेदना की गहन अनुभूतियों का वर्णन रहता है। पुराणों में देवी-देवताओं, भगवदवतारों की स्तुतियों का प्रचुर-रूप में गायन किया जाता है। स्तोत्रों की भाषा में सरसता एवं मधुरता रहती है। कथाओं या आख्यानों के समान स्तोत्रों में वर्णनात्मकता नहीं होती। स्तोत्र प्राय: चित्रात्मक होते हैं। उनमें आराध्य के स्वरूप का या आराधक के भावों का चित्र अंकित होता है। 'वामनपुराण' में भी अनेक ऐसी स्तुतियाँ है, अनेक ऐसे स्तोत्र हैं।

१७वें अध्याय में 'विष्णु पंजर स्तोत्र', २६वें अध्याय में कश्यप द्वारा भगवान् वामन की स्तुति, २९वें अध्याय में विष्णु-स्तवन, ४८वें अध्याय में वेन कृत शिव-स्तुति ४९वें अध्याय में ब्रह्म कृत शिव-स्तुति, ५६वें अध्याय में देवों के द्वारा देवी की स्तुति, ६५वें अध्याय में शिव-स्तुति, ७०वें अध्याय में अन्धक-कृत शिव-स्तुति, ७६वें अध्याय में वासुदेव-स्तुति, ८४वें अध्याय में विष्णु पंजर स्तोत्र, ८६वें अध्याय में पाप प्रशमन स्तोत्र तथा ८७वें अध्याय में अगस्त्य द्वारा गाया गया पाप प्रशमन स्तोत्र—'वामनपुराण' में विद्यमान हैं। स्पष्ट ही इन स्तुतियों में विविधता है।

इन स्तोत्रों में भक्ति-भावना की गहनता के साथ-साथ दार्शनिक चिन्तन की गहराई के भी दर्शन होते हैं। ये स्तुतियाँ विष्णु भगवान्, भगवान् वामन, भगवान् शिव तथा सरस्वती से सम्बन्धित हैं। इनमें इन देवों की नाम-महिमा का वर्णन किया गया है। उनकी किसी विजय पर जय-गान किया गया है। कुछ स्तुतियाँ नमस्कारात्मक हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि 'वामनपुराण' में कुछ गद्य-स्तुतियाँ भी हैं जो 'वामनपुराण' को विशिष्ट बनाती हैं। देवी की स्तुति से सम्बन्धित यह उद्धरण यहाँ प्रस्तुत है।

देवा ऊचुः

नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशिनि नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनि।
नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनि नमोऽस्तु ते मखभुजकार्यकारिणि॥
नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुक्षयंकरि नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते।
नमोऽस्तु ते महिपविनाशकारिणि नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते।।
नमोऽस्तु तेऽष्टादशबाहुशालिनि नमोऽस्तु ते शुम्भनिशुम्भघातिनि।
नमोऽस्तु लोकार्त्तिहरे त्रिशूलिनि नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि॥
नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे त्वां नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनि॥

देवताओं ने स्तुति की—भगवति! पापनाशिनि! आपको नमस्कार है। सुर-शत्रुओं के दर्प का दलन करनेवाली, आपको नमस्कार है। विष्णु और शङ्कर को राज्य देनेवाली, आपको नमस्कार है। यज्ञ के भाग के भोक्ता देवों का कार्य करनेवाली, आपको नमस्कार है। देवताओं के शत्रुओं का विनाश करनेवाली! आपको नमस्कार है। इन्द्र के द्वारा पूजित चरणोंवाली, आपको नमस्कार है। महिषासुर का विनाश करनेवाली, आपको नमस्कार है। विष्णु, शङ्कर एवं सूर्य से स्तुति की जानेवाली, आपको नमस्कार है। अष्टादश भुजाओं वाली, आपको नमस्कार है। शुम्भ और निशुम्भ का वध करनेवाली, आपको नमस्कार है। समस्त संसार का दुःख हरण करनेवाली तथा त्रिशूल धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। चक्र धारण करनेवाली नारायणि, आपको नमस्कार है। वाराहि! धराको सदा धारण करनेवाली, आपको नमस्कार है। नारसिंहि! आपके चरणों पर हम प्रणत हैं, आपको नमस्कार है। वज्र धारण करनेवाली, गजध्वजे! आपको नमस्कार है। कौमारि, मयूरवाहिनि! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु पैतामहहंसवाहने नमोऽस्तु मालाविकटे सुकेशिनि।
नमोऽस्तु ते रासभपृष्ठवाहिनि नमोऽस्तु सर्वार्तिहरे जगन्मये।।
नमोऽस्तु विश्वेश्वरि पाहि विश्वं निषूदयारीन् द्विजदेवतानाम्।
नमोऽस्तु ते सर्वमयि त्रिनेत्रे नमो नमस्ते वरदे प्रसीद।।
ब्रह्माणी त्वं मृडानी वरशिखिगमना शक्तिहस्ता कुमारी

वाराही त्वं सुवक्त्रा खगपतिगमना वैष्णवी त्वं सशार्ङ्गी।
दुर्द्दश्या नारसिंही घुरघुरितरवा त्वं तथैन्द्री सवज्रा
त्वं मारी चर्ममुण्डा शवगमनरता योगिनी योगसिद्धा॥
नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तव चरणानुपिता ये अहरहर्विनतशिरसोऽवनताः।
नहि नहि परिभवमस्त्यशुभं च स्तुतिवलिकुसुमकराः सततं ये।।

ब्रह्माके हंस पर बैठने वाली, आपको नमस्कार है। विकटमाला धारण करनेवाली, सुन्दर केशोंवाली, आपको नमस्कार है। गर्दभकी पीठ पर बैठने वाली, नमस्कार है। समस्त क्लेशों का नाश करनेवाली, जगन्मये! आपको नमस्कार है। विश्वेश्वरि, आपको नमस्कार है। आप विश्व की रक्षा करें तथा ब्राह्मणों और देवताओं के शत्रुओं का संहार करें। त्रिनेत्रे! सर्वमयि! आपको नमस्कार है। वरदायिनि, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप प्रसन्न हों। ब्रह्माणी और मृडानी आप ही हैं। आप ही सुन्दर मोर पर चलने वाली और हाथ में शक्ति धारण करने वाली कुमारी हैं। सुन्दर मुखवाली वाराही आप ही हैं तथा गरुड पर चलने वाली, शार्ङ्गधनुष धारण करने वाली वैष्णवी आप ही हैं। धुर-धुर शब्द करने वाली, देखने में भयंकर नारसिंही आप ही हैं। आप ही वज्र धारण करने वाली ऐन्द्री एवं महामारी चर्ममुण्डा हैं। शव पर चलने वाली तथा योग सिद्धकर चुकनेवाली योगिनी भी आप ही हैं। तीन नेत्रों वाली भगवति! आपको नमस्कार है। आपके चरणों का आश्रय कर नम्रता से प्रतिदिन अपना सिर झुकाने वालों तथा बलि एवं फूलों को हाथ में लिए सर्वदा आपकी स्तुति करनेवालों का कोई पराजय, अनादर और अकल्याण नहीं होता। (अ. ५६/५६-६३)

नमस्कारात्मक इस स्तुति में देवी की महिमा का, उसकी गुण-राशि का गायन है। देवताओं के द्वारा भावनामय रीति से देवी के रूप एवं बल-वैभव का वर्णन किया गया है। भाषा की सरलता-सरसता एवं प्रवाहशीलता देखते ही बनती है। महिषासुर-मर्दिनी की यह स्तुति निश्चय ही प्रभावशाली है।

शुक्राचार्य के द्वारा की गई भगवान् शंकर की संक्षिप्त-सी स्तुति से महादेव के भिन्न-भिन्न नामों तथा उनकी महिमा का बोध होता है—

वरदाय नमस्तुभ्यं हराय गुणशालिने।
शंकराय महेशाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥

जीवनाय नमस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे।
मदनाग्ने कालरात्रो वामदेवाय ते नमः।।
स्थाणवे विश्वरूपाय वामनाय सदागते।
महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः॥ (अ. ६९/२९-३१)

शुक्र ने कहा—प्रभो! गुण से सम्पन्न आप वरदानी हर को नमस्कार है। शंकर, महेश, त्रिनेत्र को बार-बार नमस्कार है। लोकों के स्वामी! वृषाकपे! आप जीवन-स्वरूप को नमस्कार है। हे कामदेव के लिए अग्नि-स्वरूप कालशत्रो! आप वामदेव को नमस्कार है। स्थाणु, विश्व-रूप, वामन, सदागति, महादेव, शर्ण और ईश्वर! आपको बार-बार नमस्कार है।

'वामनपुराण' के ६५वें अध्याय में भगवान् शिव से सम्बन्धित एक गद्यात्मक स्तुति है जिसमें भगवान् शिव के नामों का तथा उसके तात्त्विक रूप का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन हुआ है। भक्ति-भावना के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से स्तोत्रों का बहुत महत्त्व होता है। 'वामनपुराण' के स्तोत्रों को भी भक्ति-भावना के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में क्योंकि हम दो स्तोत्र अर्थ-सहित उद्धृत कर रहे है, अतः यहाँ पर इस विषय का संक्षिप्त-सा वर्णन ही किया गया है।

●●

१८ सौन्दर्य-वर्णन

'वामनपुराण' में नारी-सौन्दर्य का, नारी-अंगों की सुकुमारता, मृदुलता एवं सौष्ठव का बहुत ही सरस एवं काव्यमय वर्णन हुआ है। नारी के 'नखशिख' वर्णन की परम्परा का निर्वाह होने पर भी, नारी अंगों का वर्णन बहुत ही भावपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण है। नारी ही नहीं; पुरुष-सौन्दर्य का वर्णन भी 'वामनपुराण' में पर्याप्त मनोयोग से हुआ है। नगर-सौन्दर्य-वर्णन भी इस पुराण की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। युद्ध-वर्णन में भी काव्य-सौष्ठव देखते ही बनता है। हम यहाँ संक्षेप में, 'वामनपुराण' में चित्रित सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

नारी-सौन्दर्य : नारी अंगों के अन्तर्गत कुचों, भुजाओं, कटि, रोमावलि, नाभि, जघन, ऊरू, जानु युगल, जंघा, नख तथा पाद-युगलों का बहुत ही रोचक, मादक एवं सरस वर्णन 'वामन-पुराण' में किया गया है। कात्यायनी तथा उर्वशी के अंग-सौष्ठव के वर्णन द्वारा ही नारी के रूप-यौवन-सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। अंगों के पृथक्-पृथक् वर्णन द्वारा तो नारी-सौन्दर्य का चित्रण हुआ ही है, समग्र-रूप से भी नारी-रूप का विमोहक वर्णन हुआ है। उर्वशी के सौन्दर्य के विषय में वसंत ने सोचा— *किंस्वित् कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता* (अ. ७/१४) कामदेव, सुन्दरता का, रूप का प्रतीक है। उर्वशी इतनी सुन्दर है मानो कामदेव के सौन्दर्य-राज्य की राजधानी हो, जो यहाँ उपस्थित हुई है। इसी प्रकार विन्ध्य पर्वत पर स्थित कात्यायनी की रूप-यौवन-सम्पन्नता का वर्णन करते हुए पुराणकार की कल्पनाएँ भी देखी जा सकती हैं—

जितास्तया तोयधराऽलकैर्हि जितः शशांको वदनेन तन्व्या।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुताशनानि, जितानि कण्ठेन जितस्तु शंखः॥
स्तनौ सुवृत्तावथ मग्नचूचुकौ स्थितौ विजित्येव गजस्य कुम्भौ।
त्वां सर्वजेतारमिति प्रतर्क्य कुचौ स्मरेणैव कृति सुदुर्गौ॥

(अ. १९/४-५)

उस तन्वी ने केशपाश के द्वारा मेघों को, मुख के द्वारा चन्द्रमा को, तीन नेत्रों

द्वारा तीनों अग्नियों को और कण्ठ के द्वारा शंख को जीत लिया है। उसकी शोभा और तेज से ये फीके पड़ गये हैं। उसके मग्न चूचुक वाले वृत्त (सुडौल-गोले) स्तन हाथी के गण्डस्थल को मात कर रहे हैं। मालूम होता है कि कामदेव ने अपने को सर्वविजयी समझ कर आपको परास्त करने के लिए उसके दो कुच-रूपी दो दुर्गों की रचना की है। इसी प्रकार त्रिवली से तरंगायित उसकी कमर ऐसे सुशोभित हो रही है मानो वह भयार्त तथा अधीर कामदेव का आरोहण करने के लिए सोपान हो—

मध्यं च तस्यास्त्रिवली तरंगं विभाति दैत्येन्द्र सुरोमराजि।
भयातुरारोहण कातरस्य कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम्॥

(अ. १९/७)

नारी-सौन्दर्य के और भी अनेक उदाहरण यहाँ अवतरित किये जा सकते हैं, किन्तु 'संक्षिप्तता' की विवशतावश हम इस विषय को यहीं समाप्त कर रहे हैं।

पुरुष-सौन्दर्य

'वामनपुराण' में संवरण के रूप का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया गया है। संवरण के दोनों चरण चक्र, गदा एवं तलवार के चिह्नों से अंकित थे। उसकी जंघाएँ हाथी के सूढ़ के समान थीं। उसकी कमर सिंह-कटि के समान थी……। उसकी ग्रीवा शंख की आकृति के समान चिकनी तथा उन्नतावनत थी, दोनों भुजाएँ मोटी कठोर और लम्बी थीं। दोनों हाथों पर कमल-पत्र के चिह्न अंकित थे। उसका मस्तक चक्र के समान शोभा पा रहा था। पुरुष-सौन्दर्य-चित्रण की परम्परा संस्कृत 'काव्यों' में तो विद्यमान है किन्तु पुराणों की रचना शैली में ऐसे वर्णन विरल ही देखने में आते हैं।

नगर-सौन्दर्य वर्णन 'वामनपुराण' के तीसरे अध्याय में वाराणसी नगर का वर्णन, उस नगर की सुन्दरता, मनोहारिता का प्रभावशाली वर्णन किया गया है। इसके सम्बन्ध में कहा गया है—

न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले। (अ. ३/२९)

उसके समान अन्य कोई तीर्थ आकाश, पृथ्वी एवं रसातल में नहीं है। वाराणसी

का वर्णन करते हुए पुराणकार का कथन है कि जहाँ चौराहों पर भ्रमण करने वाली स्त्रियों के अलक्तक (महावर) से अरुणित चरणों को देखकर चन्द्रमा को स्थल-पद्मिनी के चलने का भ्रम हो जाता है और जहाँ रात्रि का आरम्भ होने पर ऊँचे-ऊँचे देव-मन्दिर चन्द्रमा का (मानो) अवरोध करते हैं एवं दिन में पवनान्दोलित दीर्घ पताकाओं से सूर्य भी छिपे रहते हैं—

व्रजत्सु योषित्सु चतुष्पथेषु पदान्यलक्तारुणानि दृष्ट्वा।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्यां किंस्वित् प्रयाता स्थल पद्मिनीयम्॥
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु।
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभिर्दीर्घाभिरेवं सुपताकिकाभिः॥
(अ. ३/३२-३३)

वाराणसी नगरी की सुन्दरता के वर्णन करते हुए 'वामनपुराण' में आगे के श्लोकों में कहा गया है—

भृंगाश्च यस्यां शशिकान्त भित्तौ प्रलोभ्यमनाः प्रतिबिम्बितेषु।
आलेख्य योषिद्विमलाननाब्जेष्वीयुर्भ्रमान्नैव च पुष्पकान्तरम्॥
परिभ्रमंश्चापि पराजितेषु नरेषु संमोहन लेखनेन।
यस्यां जलक्रीडन संगतासु न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु।।
(अ. ३/३४-३५)

जिस (वाराणसी) में चन्द्रकान्तमणि की भित्तियों पर प्रतिबिम्बित चित्र में निर्मित स्त्रियों के निर्मल मुख-कमलों को देखकर भ्रमर उन पर भ्रमवश लुब्ध हो जाते हैं और दूसरे पुष्पों की ओर नहीं जाते; हे शम्भो! वहाँ सम्मोहन-लेखन से पराजित पुरुषों में तथा घर की बावड़ियों (बावलियाँ) में जल-क्रीडा के लिए एकत्र हुई स्त्रियों में ही 'भ्रमण' देखा जाता है, अन्यत्र किसी के 'भ्रमण' (चक्कर-रोग) नहीं होता। इसी वर्णन शैली में और भी कुछ श्लोकों में यमक अलंकार के चमत्कार द्वारा काव्य-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई है।

युद्ध-वर्णन-सौंदर्य

स्त्री-पुरुष-सौन्दर्य, नगर-सौन्दर्य वर्णन के अतिरिक्त युद्ध का भी बहुत प्रभावशाली एवं काव्यमय वर्णन हुआ है। युद्ध-वर्णन तो अन्य कई पुराणों में

भी हुआ है, किन्तु 'वामनपुराण' का यह समर-वर्णन काव्य सौन्दर्य से युक्त है, आलंकारिक है। प्रह्लाद का नर-नारायण के साथ युद्ध का वर्णन, अन्धकासुर तथा देव के साथ युद्ध का वर्णन, महिषासुर तथा कात्यायनी का युद्ध, शुम्भ-निशुम्भ से कात्यायनी का युद्ध, तारकासुर तथा कार्तिकेय का युद्ध, अन्धकासुर तथा पार्वती का युद्ध, देवों तथा दानवों का युद्ध, अन्धकासुर का देवों तथा शंकर से घनघोर युद्ध, विष्णु तथा कालनेमि का युद्ध—'वामनपुराण' में वर्णित युद्ध हैं, जिनमें ओज, प्रवाह, तेज, प्रचण्डता, बीभत्सता का प्रभावपूर्ण अंकन हुआ है। यहाँ हम दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

मूर्ध्नि नारायणस्यपि सा गदा दानवर्पिता।
जगाम शतधा, ब्रह्मन् शैल श्रृंगे यथाऽशनि।। (अ. ८/३)

पर्वत की चोटी पर गिरकर जैसे वज्र टूट जाता है उसी प्रकार हे ब्रह्मन! दानव द्वारा नारायण के सिर पर चलाई गई वह गदा भी सैंकड़ों टुकड़े हो गई। स्पष्ट ही यह साधारण युद्ध-वर्णन नहीं है। उपमा अलंकार के प्रयोग से युद्ध का एक प्रभावशाली दृश्य उपस्थित किया गया है। एक अन्य उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है—

स दह्यमनो दितिजोऽग्निनाऽथ
सुविस्तरं घोरतरं रुराव।
सिंहभिपन्नो विपिने यथैव
मत्तो गजः क्रन्दति वेदनार्तः।। (अ. १०/४७)

अग्नि द्वारा जलते दैत्य ने उस समय मुक्त कण्ठ से इस प्रकार रोदन किया, जैसे वन में सिंह से आक्रान्त मतवाला हाथी वेदना से दुःखी होकर करुण चिंग्घाड़ करता है।

इस प्रकार युद्ध का वर्णन हो या नगर की शोभा का चित्रण, पुरुष के सौन्दर्य का वर्णन हो या नारी के रूप-यौवन का वर्णन, 'वामनपुराण' में उसे काव्यमय ढंग से ही प्रस्तुत किया गया है। पुराणकार की सौन्दर्यानुभूति की प्रखरता इन सभी प्रसंगों में देखी जा सकती है।

●●

१९ प्रकृति-वर्णन

प्रकृति का वर्णन अन्य पुराणों में भी थोड़ा-बहुत हुआ है, क्योंकि वहाँ प्रकृति का 'यथातथ्य' वर्णन ही देखने को मिलता है। उसमें साहित्यिक सौन्दर्य नहीं है। इसके विपरीत 'वामनपुराण' के प्रकृति-चित्रण में साहित्यिक सौन्दर्य भी विद्यमान है। अत्यन्त सहृदयता के साथ, भावुकता के साथ पुराणकार प्रकृति का निरीक्षण करता है और फिर उसे काव्यमय भाषा में अभिव्यक्त करता है। 'वामनपुराण' में प्रकृति-चित्रण निश्चय ही अद्वितीय विषय है। पुराणों के श्लोक प्राय: वर्णनात्मक होते हैं, चित्रात्मक नहीं, किन्तु 'वामनपुराण' का प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन आलंकारिक है। उपमा, रूपक आदि के प्रयोगों को देखकर यह विश्वास नहीं होता कि यह प्रकृति-वर्णन किसी पुराण में हुआ है। यह किसी प्रौढ़-परिपक्व कवि की लेखनी का उपहार-सा, चमत्कार-सा लगता है। पाठकों को चमत्कृत करने वाले ये प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहारी एवं मंजुल बन पड़े हैं। 'वामनपुराण' में वसंत, वर्षा तथा शरद, इन तीन ऋतुओं का सरस एवं कलात्मक चित्रण हुआ है। हम यहाँ उदाहरणों द्वारा यहाँ कुछ दृश्य प्रस्तुत करना चाहते हैं।

पुराणकार वसंत ऋतु का मानवीकरण करते हुए उसे एक सिंह के रूप में प्रस्तुत करता है—

शिशिरं नाम मातंग विदार्य नखैरिव।
वसंत केसरी प्राप्तः पलाश कुसुमैर्मने॥ (वामन पु. ६/१०)

पलाश के फूल खिल गये हैं। पलाश-फूलों का रंग चटकीला लाल होता है। पुराणकार उसकी समता सिंह के रक्तरंजित नखों के साथ कर रहा है। वसंत-रूपी सिंह ने शिशिर-रूपी मातंग को पलाश-रूपी नखों से विदीर्ण कर दिया और तभी सिंह का आगमन सम्भव हुआ है। शिशिर के पश्चात् वसन्तागम तथा टेसू के फूलों के खिलने को पुराणकार ने कितने सुन्दर एवं सरस रूपक द्वारा व्यक्त किया है।

वसंत ऋतु में रक्ताशोक पुष्पित होते देखकर पुराणकार की कल्पना स्फुरित हुई है—

रक्ताशोक वना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः।
भृत्या वसंतनृपतेः संग्रामेऽसृवप्लुता इव।। (वा. पु. ६/१४)

अशोक वन में रक्ताशोक पुष्पित होकर अत्यन्त रमणीय लग रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा वसंत के संग्राम में रक्त से परिप्लुत उसके भृत्य हों। इसी प्रकार 'वामनपुराण' में वसंत का लक्ष्मी-रूप में भी एक लम्बे सांगरूपक के माध्यम से चमत्कारपूर्ण चित्रण किया गया है। (अ. ६/-१७-२१)

'वामनपुराण' के प्रथम अध्याय में (श्लोक १७-२२) वर्षा ऋतु का भी अत्यन्त प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। यहाँ हम दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

विवान्ति वाता हृदयावदारणा, गर्जन्त्यमी तोयधरा महेश्वर।
स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्युता, वाशन्ति केकारवमेव बर्हिणः॥
(अ. १/१७)

वर्षा के समय का चित्र अंकित करते हुए बताया गया है कि उस समय हवा हृदय को विदीर्ण करने वाली और अत्यन्त वेगशीला होती है। मेघ ज़ोर-ज़ोर से गरजते हैं। नीले मेघों के समूह में बिजलियाँ चमकती हैं और इन सबसे प्रसन्न होकर मोर नाचते हैं।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक का वर्षा-चित्र द्रष्टव्य है—

श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं, त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात्।
यथाश्रयान् योगिगणः समन्तान्, पृवृद्धमलानपि सन्त्यन्ति।।
(अ. १/१९)

वर्षा ऋतु में मेघ की गर्जना को सुनकर इस जलाशयों को छोड़कर, मानसरोवर को चले जाते हैं; (क्योंकि वर्षा ऋतु में जलाशयों का जल मैला हो जाता है) हंसों के जलाशयों को छोड़ने की उपमा पुराणकार योगीजन के साथ देता है कि जिस प्रकार योगी लोग अपने समृद्ध घर को त्याग देते हैं, वैसे ही हंस जलाशयों को त्याग देते हैं। सात्त्विक वृत्ति वाले योगी श्वेत वर्ण वाले हंस

होते हैं—यह उपमा बहुत ही सटीक है। एक अन्य दृश्य यहाँ विशेष रूप से अवतरित किया जा रहा है। नीले मेघों के द्वारा आकाश आच्छादित हो जाता है। उस समय सर्ज के पुष्प खूब खिलते हैं। कदम्ब में मुकुल लगते हैं। बिल्व वृक्ष फलों से लद जाता है और नदियाँ जल से भर जाती हैं। सरोवरों में कमल खूब खिल उठते है—

नीलैश्च मेघश्च समावृत्तं नभः पुष्पैश्च सर्जा मुकुलैश्च नीपाः।
फलैश्च बिल्वाः पयसा तथापगाः पत्रैः सपद्मैश्च महासरांसि

(अ. १/२२)

निश्चय ही यहाँ पुराणकार का सूक्ष्म निरीक्षण तथा अलंकृत भाषा में प्रकृति का चित्रण बहुत ही प्रभावशाली है।

'वामनपुराण' में शरद् ऋतु का वर्णन द्वितीय अध्याय में (२-४) तीन श्लोकों में हुआ है।

त्यजन्ति नीलाम्बुधरा नभस्तलं वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि।
पद्मा सुगन्धं निलयानि वायसा रुरुर्विषाणं कुलुषं जलाशयाः॥
विकासमायान्ति च पङ्कजानि चन्द्रांशवो भान्ति लता सुपुष्पा।
नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति।।
सरः सु पद्मा गगने च तारका जलाशयेष्वेष तथा पयांसि।
सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं वैमल्यमायान्ति शशांककान्तयः॥

(शरद ऋतु में) नीले मेघ आकाश को और बगुले वृक्षों को छोड़कर अलग हो जाते हैं। नदियाँ भी तट को छोड़कर बहने लगती हैं। इसमें कमल-पुष्प सुगन्ध फैलाते हैं, कौवे भी घोसलों को छोड़ देते हैं। रुरुमृगों के शृंग गिर पड़ते हैं और जलाशय सर्वथा स्वच्छ हो जाते हैं। इस समय कमल विकसित होते हैं, शुभ्र-चन्द्रमा की किरणें आनंददायिनी होकर फैल जाती हैं, लताएँ पुष्पित हो जाती हैं, गौवें हृष्ट-पुष्ट होकर आनंद से विहरती हैं तथा संतों को बड़ा सुख मिलता है। तालाब में कमल, गगन में तारागण, जलाशयों में निर्मल जल और दिशाओं के मुखमण्डल के साथ सज्जनों का चित्त तथा चन्द्रमा की ज्योति भी सर्वथा स्वच्छ एवं निर्मल हो जाती है।

स्पष्ट ही, शरदागम का यह दृश्य स्वाभाविक एवं सुन्दर बन पड़ा है। प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी उपर्युक्त ऋतु-वर्णन-प्रसंग बहुत ही मार्मिक, प्रभावशाली एवं आह्लादक है। इन वर्णनों को पढ़ते समय ऐसा अनुभव होता है कि किसी प्रौढ़, परिपक्व कवि के द्वारा यह प्रकृति-चित्रण किया गया है। प्रकृति के ये चित्र आलम्बन-रूप में ही प्रस्तुत किये गये हैं। निश्चय ही 'वामनपुराण' का यह ऋतु-वर्णन संश्लिष्ट, भावमय, रोचक तथा प्रभावशाली है। पुराणों में ऐसे प्रसंग विरल ही होते हैं।

••

२० प्रवर (सर्वश्रेष्ठ) परिचय

'वामनपुराण' के १२वें अध्याय में एक विस्तृत सूची प्रस्तुत की गई है जिसके अनुशीलन से प्राचीन भारत की संस्कृति का, यहाँ की धर्म-साधना का तथा अनेकानेक अन्य विषयों का बोध होता है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यह सूची यहाँ अवतरित की जा रही है—

यथा सुरांणां प्रवरो जनार्दनो यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः।
यथा युधानां प्रवरं सुदर्शनं यथा खगानां विनतातनूजः॥
महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो यथा च भूतेषु मही प्रधाना॥
नदीषु गंगा जलेषु पद्मं सुरारिमुख्येषु हराङ्घ्रि भक्तः।
क्षेत्रेषु यव्दत्कुरुजांगलं वरं तीर्थेषु यद्वत् प्रवरं पृथूदकम्॥
सरस्सु चैवोत्तरमानसं यथा वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा।
लोकेषु यद्वत् सदनं विरञ्चेः सत्यं यथा धर्मविधिक्रियासु॥
यथाश्वमेघः प्रवरः क्रतूनां पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः।
तपोधनानामपि कुम्भमोनिः श्रुतिर्वरा यद्वदिहागमेषु॥
मुख्य पुराणेषु मथैव मात्स्यः स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु।
मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव तिथीषु दर्शो विषुवेषु दानम्।।

(श्लोक ४४-४८)

जैसे देवताओं में विष्णु, पर्वतों में हिमालय, अस्त्रों में सुदर्शन, पक्षियों में गरुड़, महान् सर्पों में अनन्तनाग तथा भूतों में पृथ्वी श्रेष्ठ हैं; नदियों में गंगा, जल में उत्पन्न होने वालों में कमल, देवशत्रुदैत्यों में महादेव के चरणों का भक्त और क्षेत्र में जैसे कुरु जांगल और तीर्थों में पृथूदक (पिहोवा) हैं; जलाशयों में उत्तरमानस, पवित्र वनों में नन्दनवन, लोकों में ब्रह्मलोक, धर्मकार्यों में सत्य प्रधान है तथा जैसे यज्ञों में अश्वमेध, स्पर्श सुख देने वाले पदार्थों में पुत्र सुखदायक है; तपस्वियों में अगस्त्य, आगम शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ हैं, जैसे पुराणों में मत्स्यपुराण, संहिताओं में स्वयम्भूसंहिता, स्मृतियों में मनुस्मृति, तिथियों में

अमावस्या और विषुवों अर्थात् मेष और तुला राशि में सूर्य के संक्रमण—संक्रान्ति के अवसर पर किया गया दान श्रेष्ठ होता है।

तेजस्विनां यद्वदिहार्क उक्तो ऋक्षेषु चन्द्रोजलधिर्ह्रदेषु।
भवान् तथा राक्षससत्तमेषु पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः॥
धान्येषु शालिर्द्विपदेषु विप्रः चतुष्पदे गो श्वपदां मृगेन्द्रः।
पुष्पेयु जाती नगरेषु काञ्ची नारीषु रम्भाऽऽश्रमिणां गृहस्थः॥
कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु देशेषु सर्वेषु च मध्यदेशः।
फलेषु चूतो मुकुलेष्वशोकः सर्वौषधीनां प्रवरा च पश्या।।
मूलेषु कन्दः प्रवरोयथोक्तो व्याधिष्वजीर्णं क्षणदाचरेन्द्रः।
श्वेतेषु दुग्धं प्रवरं यथैव कार्पासिकं प्रावरणेषु यद्वत्।।

जैसे तेजस्वियों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा, जलाशयों में समुद्र, अच्छे राक्षसों में आप (सुकेशी) और निश्चेष्ट करने वाले पाशों में नागपाश श्रेष्ठ हैं एवं जैसे धानों में शालि, दो पैर वालों में ब्राह्मण, चौपायों में गाय, जंगली जानवरों से सिंह, फूलों में जाती (चमेली), नगरों में काञ्ची, नारियों में रम्भा और आश्रमियों में गृहस्थ श्रेष्ठ हैं; जैसे सप्तपुरियों में कुशस्थली (द्वारका), समस्त देशों में मध्य देश, फलों में आम, मुकुलों में अशोक और जड़ी-बूटियों में हरीत सर्वश्रेष्ठ हैं, हे निशाचर! जैसे मूलों में कन्द, रोगों में अपच, श्वेत वस्तुओं में दुग्ध और वस्त्रों में रूई के कपड़े सर्वश्रेष्ठ हैं (४९-५२)

कलासु मुख्या गणितज्ञता च विज्ञातमुख्येषु यथेन्द्र जालम्।
शाकेषु मुख्या त्वपि काकमाची रसेषु मुख्यं लवणं यथैव।।
तुङ्गेषु तालो नलिनीषु पम्पा वनौकसेष्वेव च ऋक्षराजः।
महीरुहेष्वेव यथा वटश्च यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः॥
यथा सतीनां हिमवसुताहि यथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा।
यथा वृषाणामपि नील वर्णो यथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु।
दुर्गेषु रौद्रेषु निशचरेश! नृपातनं वैतरणी प्रधाना।।
पापीयसां तद्वदिह कृतघ्नः सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र।
ब्रह्मघ्न गोघ्नादिषु निष्कृतिर्हि विद्येत नैवास्य तु दुष्ट चारिणः।
न निष्कृतिश्चास्ति कृतघ्नवृत्तैः सुहृत्कृतं नाशयतोऽब्द कोटिभिः॥

हे निशाचर! जैसे कलाओं में गणित का जानना, विज्ञानों में इन्द्रजाल, शाकों में मकोच, रसों में नमक, ऊँचे पेड़ों में ताड़, कमल सरोवरों में पम्पासर, बनैले जीवों में भालू, वृक्षों में वट, ज्ञानियों में महादेव वरिष्ठ हैं; जैसे सतियों में हिमालय की पुत्री पार्वती, गौओं में कपिला (काली) गाय, बैलों में नील रंग का बैल, सभी दु:सह एवं भयंकर नरकों में वैतरणीनृपातन प्रधान है,उसी प्रकार हे निशाचरेन्द्र! पापियों में कृतघ्न प्रधानतम पापी होता है। ब्रह्महत्या एवं गोहत्या आदि पापों की निष्कृति (छुटाकारा) तो हो जाती है, पर दुराचारी पापी एवं मित्र द्रोही कृतघ्न का करोड़ों वर्षों में भी निस्तार नहीं है।

कुरु जाङ्गल क्षेत्र और पृथूदक को सर्वश्रेष्ठ तीर्थ बताने के कारण ही हमने यह अनुमान लगाया है कि वामन-पुराण का रचना-स्थल कुरुक्षेत्र है। इसमें मध्य देश को सर्वश्रेष्ठ प्रदेश कहा गया है। मध्य देश की महिमा का वर्णन 'मनुस्मृति' तक में हुआ है। विष्णु को इसमें सर्वोपरि देवता कहा गया है। शिव की भी पर्याप्त महिमा इस पुराण में वर्णित है। अत: धार्मिक सद्‌भाव की दृष्टि में 'वामनपुराण' की महत्ता स्वत: स्पष्ट है। 'काञ्ची' जैसी दूर दक्षिण में स्थित नगरी को सर्व श्रेष्ठ बताकर इस पुराण ने उत्तर-दक्षिण के भेद को समाप्त कर समूचे भारत की एकता का प्रतिपादन किया है। लौकिक एवं धार्मिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कई विषयों का भी संकेत इस वर्णन से प्राप्त हो जाता है। प्राचीन भारत की आस्थाओं, विश्वासों, मान्यताओं के सम्बन्ध में सामान्य जानकारी की दृष्टि से भी यह वर्णन बहुत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

हर्षवर्द्धन के नाम के साथ जुड़े थानेसर (कुरुक्षेत्र) पिहोवा, आदि की महत्ता के वर्णन के कारण इस पुराण के रचना-काल छठी-सातवीं शती में माने जाने का भी अनुमान होता है।

●●

२१ कुमारसम्भव और वामनपुराण

'वामनपुराण' पर कालिदास-रचित 'कुमार सम्भव' का आश्चर्यजनक प्रभाव लक्षित होता है। पार्वती की तपस्या और ब्रह्मचारी के रूप में शिव के साथ पार्वती के संवाद नामक प्रसंग में और 'वामनपुराण' में एतद्विषयक वर्णन में अद्‌भुत साम्य है। तपस्या-वर्णन में भी 'कुमारसम्भव' का ही अनुगमन 'वामनपुराण' में मुख्य रूप से हुआ है। कहीं-कहीं तो कालिदास की शब्दावली का भी अक्षरश: अनुकरण किया गया है। ऐसे कतिपय उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कुमार सम्भव

उमेति मात्रा तपसोनिषिद्धा पश्चात् उमाख्या सुमुखी जगाम्। (१/२६)

फिर माता के तपश्चर्या के निषेध करने से (तप मत कर—ऐसा कहने से) उस सुन्दरमुखी पार्वती का 'उमा' यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ।

वामनपुराण

तपसो वारयामास उमेत्योवब्रवीच्च स। (५१/२१)
तदेव माता नामस्याश्चक्रे पितृसुता शुभा। (५१/२२)

माता ने तपश्चर्या का निषेध करते हुए उसे 'उ', 'मा' कहा—(ऐसा मत करो) पितरों की पुत्री कल्याणमयी माता (मेना) ने कन्या का वही दो अक्षरों से संयुक्त नाम 'उमा', यह नाम रखा।

कुमारसम्भव

कुले प्रसूति प्रथमस्य वेधस: त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपु:
अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तप: फलं स्यात्किमत: परं वद?
(५/४१)

मनुष्य जाति के आदि स्रष्टा ब्रह्मा के वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। शरीर में मानों तीनों लोकों की सुन्दरता एकत्रित हो गई हो, सम्पत्ति का सुख तुम्हें ढूँढ़ना

नहीं है (तुम राजपुत्री हो) तुम्हारी आयु नई है, तो बताओ इससे बढ़कर और क्या तपस्या का फल हो सकता है ?

वामनपुराण

तपसा वाञ्छयन्तीह वपुः गिरिजे सचराचराः ।
रूपाभिजनमैश्वर्यं तच्च ते विद्यते बहुः ॥ (५१/५८)

हे गिरिजा ! चर और अचर सभी प्राणी तपस्या से संसार में रूप, उत्तम कुल और ऐश्वर्य चाहते हैं, सो तो तुम्हें अधिक-से-अधिक सुलभ है ही । फिर भला तुम जटा क्यों धारण कर रही हो ?

कुमार सम्भव

किमित्यपास्याऽऽभरणानि यौवने
धृतं त्वया वार्धक्यशोभि वल्कलम् ।
वद प्रदोषे स्फुट चन्द्रतारका
विभावरी यद्यरुणाय कल्पते ।। (५/४४)

हे पार्वती ! तुमने आभूषणों को त्याग कर बुढ़ापे में अच्छी लगने वाली वृक्ष की छाल क्यों धारण कर ली है ? बता तो सही । कहीं चमकते हुए चन्द्रमा और तारों वाली रात प्रारम्भ में ही प्रभात में बदल सकती है ?

वामनपुराण

तत्किमर्थमपास्येतान् अलंकारान् जटा धृतः ।
चीनांशुकं परित्यज्य किं त्वं बल्कल धारिणी ।। (५१/५९)

फिर किसलिए तुमने आभूषणों को त्याग कर, सारे सौन्दर्य साधनों को त्याग कर जटा क्यों धारण कर ली है ? तुमने रेशमी वस्त्र छोड़कर वल्कल क्यों पहन लिया है ?

कुमारसम्भव

अवस्तु निर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽथमामुक्त विवाह कौतुकः ।
करेण शम्भोर्वलयी कृताऽहिना सहिष्यते तत्प्रथमाऽवलम्बनम् ॥
(५/६६)

हे तुच्छ वस्तु के पीछे पड़ी हुई पार्वती ! विवाह के मंगल सूत्र से युक्त होने योग्य यह तेरा हाथ साँप का कंगन पहने हुए शिव के हाथ से पहले-पहल पकड़ने

को, (पाणिग्रहण को) किस प्रकार सहन कर सकेगा ? अर्थात् नहीं सहन कर सकेगा।

वामनपुराण

कथं करः पल्लवकोमलस्ते समेष्यते शार्वकरं ससर्पम् (५१/६३)

पल्लव के सदृश तुम्हारा कोमल कर शंकर के सर्पयुक्त हाथ से कैसे मिलेगा ?

कुमारसम्भव

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंस लक्षणं गजाजिनं शोणित बिन्दुवर्षि च।।

(५/६७)

हे पार्वती ! तुम स्वयं अच्छी प्रकार सोचो कि कहां हंसों के चिह्नों से युक्त नवविवाहिता वधू का रेशमी वस्त्र और खून से सनी हुई महादेव की हाथी की खाल, ये दोनों कभी एक साथ रहने योग्य हैं ?

वामनपुराण

तथा दुकूलाम्बर शालिनी त्वं मृगारि चर्माभिवृतस्तु रुद्रः।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्म भूषितो, न युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम्॥

(५१/६४)

कहाँ तुम सुन्दर वस्त्र धारण करने वाली और कहाँ व्याघ्र चर्म धारण करने वाले ये रुद्र ! कहाँ तुम चन्द्रन से चर्चित और कहाँ भस्म से भूषित शंकर ? अतः मुझे यह मेल (विवाह) अनुरूप नहीं प्रतीत होता।

कालिदास-कृत कुमारसम्भव तथा 'वामनपुराण' से ऐसे और भी अनेक श्लोक उद्धृत किये जा सकते हैं जिनमें शब्द साम्य, वाक्य साम्य तथा भाव-साम्य के दर्शन होते हैं। कालिदास के श्लोकों में जो भाषा-विदग्धता है, वैसी विदग्धता तो 'वामनपुराण' के श्लोकों की भाषा में नहीं है। फिर भी, 'वामनपुराण' में भाषा की चारुता, भावों का सौन्दर्य तो कुमारसम्भव के समान ही है। यह 'वामनपुराण' की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इस प्रकार का काव्य, सौष्ठव पुराणों में प्रायः विरल ही होता है।

● ●

२२ महत्त्व एवं मूल्यांकन

'वामनपुराण' में सदाचार का वर्णन विशेष-रूप से हुआ है। इस विषय का वर्णन अन्य पुराणों में भी हुआ है, परन्तु जितनी विस्तार एवं विशदता से सदाचार का वर्णन इस पुराण में हुआ है, उतना अन्य किसी पुराण में नहीं हुआ। मनुष्यों के आचरण को नियन्त्रित किया गया है, उसे अनुशासन-बद्ध करने का प्रयास किया गया है। मानव-जीवन के उत्कर्ष के लिए, उसकी लौकिक-पारलौकिक उन्नति के लिए आचरण का श्रेष्ठ होना आवश्यक है। व्यक्ति और समाज, दोनों के कल्याण में सदाचार का महत्त्व है, यह 'वामनपुराण' का प्रमुख सन्देश है।

'वामनपुराण' में भगवान् विष्णु के अवतार वामन के चरित्र का विशेष रूप से वर्णन हुआ है। इसके साथ ही पूर्ण विस्तार से शिव की महिमा भी इसमें वर्णित है। माँ दुर्गा का, शक्ति की महिमा का भी वर्णन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। सूर्योपासना का भी 'वामनपुराण' में उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट है कि 'वामनपुराण' में धार्मिक-साम्प्रदायिक सद्‌भाव का ही चित्रण किया गया है। किसी देवता विशेष को श्रेष्ठतम मानकर उसके समक्ष दूसरे किसी देवता को 'छोटा' या 'हीन' नहीं बताया गया। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों देवों की एक-जैसी महत्ता इस पुराण में वर्णित है।

'वामन-पुराण' में पूजा-उपासना की जो पद्धतियाँ वर्णित हैं, उन पर तन्त्र-साधना का कोई प्रभाव नहीं है। वैदिक विधि-विधान के अनुसार ही सभी देवों की पूजा का विधान इस पुराण में देखा जा सकता है। आठवीं शताब्दी से भारतीय धर्म-साधना पर तान्त्रिक प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। इस पुराण में तन्त्र का प्रभाव न होने से यह स्पष्ट है कि इस पुराण का रचना-काल छठी-सातवीं शताब्दी का रहा होगा।

'वामन-पुराण' में दैत्य-दानव-वंश का विस्तृत परिचय दिया गया है। अन्य पुराणों की तुलना में इस पुराण की यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता है। देवों-

दानवों के संघर्षों का वर्णन तो इस पुराण में हुआ ही है, दैत्यों की संस्कृति की कतिपय मुख्य-मुख्य विशेषताओं का उद्‌घाटन भी इस पुराण में हुआ है। प्रह्लाद जैसे कुछ दैत्यों के माध्यम से वैष्णव संस्कृति या देव-संस्कृति तथा दैत्य संस्कृति को एक दूसरे के समीप लाने का भी प्रयास हुआ है। दैत्य-दानव संस्कृति पर वैष्णव प्रभाव के कई उदाहरण 'वामनपुराण' में देखे जा सकते हैं।

'वामनपुराण' में कई आख्यान ऐसे भी वर्णित हैं जिनका वर्णन अन्य पुराणों में नहीं हुआ। कुछ वृत्तान्त या घटनाएँ एकदम नवीन हैं। विष्णु, शिव तथा ऋषि मुनियों के सम्बन्ध में दिये गये अनेकानेक आख्यानों से इस पुराण की रोचकता में वृद्धि हुई है।

भारतवर्ष के अनेक तीर्थों का भौगोलिक वर्णन इस पुराण में हुआ है। अनेक शिव-तीर्थों का तो अत्यन्त सूक्ष्म परिचय इसमें दिया गया है। वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक तीर्थों का भी 'वामनपुराण' में विस्तृत परिचय प्राप्त होता है। भूगोल एवं धर्म-साधना, दोनों दृष्टियों से इन तीर्थ-स्थानों के वर्णन का महत्त्व प्रकट होता है।

अनेक देव-देवताओं की स्तुतियाँ इस पुराण में की गई हैं। इन स्तोत्रों में भावों की तीव्रता है, उत्कट भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इन स्तोत्रों की भाषा में भी स्निग्धता-कोमलता है।

साहित्यिक-सौन्दर्य तथा जीवनोपयोगी सूक्तियों की दृष्टि से तो यह पुराण निश्चय ही सब पुराणों से पृथक् दिखाई देता है। सौन्दर्य-वर्णन, प्रकृति-वर्णन जैसे प्रसंगों को पढ़ते हुए पाठक यह अनुभव करने लगता है कि वह किसी रस-सिद्ध, उत्कृष्ट-कवि की काव्य-रचना में अवगाहन कर रहा है। कालिदास की कृतियों का तो इस पुराण पर विशेष प्रभाव पड़ा है। अतः 'वामनपुराण' का धार्मिक-सांस्कृतिक महत्त्व तो है ही, साहित्यिक दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है। यद्यपि 'वामनपुराण' आकार में छोटा है तथापि इसमें पुराण के सभी अंगों का वर्णन हुआ है। इसकी वर्णन-शैली अधिक स्पष्ट एवं विवेचनापूर्ण है। डॉ. (श्रीमती) मालती त्रिपाठी ने इस पुराण का महत्त्व-प्रतिपादन एवं मूल्याकन

इन शब्दों में किया है—'निष्कर्ष यह है कि अठारह महापुराणों के अन्तर्गत 'वामनपुराण' अपनी महनीय विशेषता धारण करता है। धर्म तथा आचार, धार्मिक सम्प्रदाय तथा उनकी भक्ति भावना, दैत्य तथा दानवों का चरित, भुवनकोष तथा भारत के विविध तीर्थों का विस्तृत वर्णन, सुबोध शैली तथा साहित्यिक सौन्दर्य का चित्रण, इन सब विषयों में 'वामनपुराण' प्रमुख स्थान धारण करता है और पुराण के तुलनात्मक अध्येता का ध्यान अपनी ओर अवश्यमेव आकृष्ट करता है।' (वामनपुराण का साँस्कृतिक अध्ययन पृ. ३९५)

कांची-जैसी सुदूर दक्षिण में स्थित नगरी को सर्वश्रेष्ठ बताकर इस पुराण ने उत्तर-दक्षिण के भेद को समाप्त कर समूचे भारत की एकता का प्रतिपादन किया है। प्राचीन भारत की आस्थाओं, विश्वासों, मान्यताओं के सम्बन्ध में भी प्रचुर जानकारी इस पुराण में दी गई है। लौकिक एवं साँस्कृतिक दृष्टि से 'वामनपुराण' बहुत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है।

●●

परिशिष्ट

(क) कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्।

(ख) मानव तथा मानवेतर जातियों के विशेष धर्म।

(ग) गजेन्द्र मोक्ष स्तोत्र।

(घ) सारस्वत विष्णु स्तोत्र।

कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्

ब्रह्मामुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च।
गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरंगिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः।
रैभ्यो मरीचिश्चयवनो ऋभुश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिंगलौ च।
सप्तस्वराः सप्त रसातलाश्च कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
पृथ्वी सगन्धा सरसास्थापः स्पर्शश्च वायुर्ज्वलन सतेजाः।
नभः सशब्दं महता सहैव यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च सप्तर्षियो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्य भक्त्या।
दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात्॥

(अ. १४/२३-२८)

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, ये देवता तथा सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर ग्रह, ये सभी मेरे प्रातःकाल को मंगलमय बनाएँ। भृगु, वसिष्ठ, क्रतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैम्भ, मरीचि, च्यवन तथा ऋभु, ये सभी (ऋषि) मेरे प्रातःकाल को मंगलमय बनाएँ। सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, पिंगल, सातों स्वर और सातों रसातल, ये सभी मेरे प्रातःकाल को मंगलमय बनाएँ। गन्ध गुणवाली पृथ्वी, रसगुणवाला जल, स्पर्श गुणवाली वायु, तेजो गुणवाली अग्नि, शब्द गुण वाला आकाश एवं महतत्त्व, ये सभी मेरे प्रातःकाल को मंगलमय बनाएँ। सातों समुद्र, सातों कुल पर्वत, सप्तर्षि, सातों द्वीप एवं भू आदि सातों लोक—ये सभी प्रभातकाल में मुझे मंगल प्रदान करें। इस प्रकार प्रातःकाल में परम पवित्र सुप्रभात-स्तोत्र को भक्तिपूर्वक पढ़े, स्मरण करे अथवा सुने। निष्पाप! ऐसे करने से भगवान् की कृपा से उसके दुःस्वप्न का नाश होता है तथा सुन्दर प्रभात होता है।

मानव तथा मानवेतर जातियों के विशेष धर्म

'वामनपुराण' में धर्म शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए—इसे गुण, स्वभाव, प्रवृत्ति, प्रकृति आदि अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। देवों, दैत्यों, सिद्धों, गन्धर्वों किन्नरों, विद्याधरों, पितरों, ऋषियों आदि के क्या विशिष्ट धर्म हैं, इस सम्बन्ध में 'वामनपुराण' में प्रकाश डाला गया है। हम यहाँ पर इन्हीं विशिष्ट धर्मों की चर्चा कर रहे हैं।

(१) देवताओं का धर्म

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिका क्रियाः।
स्वाध्यायवेदवेत्तृत्व विष्णु पूजारतिः स्मृता।। (वा.पु. ११/१५)

सर्वदा यज्ञादि क्रियाएँ करना, स्वाध्याय, वेद के तत्त्व को जानना तथा विष्णु-पूजा में लीनता, देवताओं के परम धर्म हैं।

(२) दैत्यों का धर्म

दैत्यानां बाहुशालित्व मात्सर्यं युद्धसत्क्रिया।
वेदनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता।। (अ. ११/१६)

बाहुबल में प्रचण्डता, मत्सरता, युद्ध में श्रेष्ठता-निपुणता, नीति-शास्त्र का ज्ञान तथा महादेव शंकर में भक्ति-भाव रखना, दैत्यों के धर्म हैं।

(३) सिद्धों का धर्म

सिद्धानामुदितो धर्मो योगयुक्तिरनुत्तमा।
स्वाध्यायं ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्द्वाभ्यामपि स्थिरा।। (अ. ११/१७)

योगाभ्यास द्वारा योगसिद्धि को प्राप्त करना, वेद पढ़ना, ब्रह्म को जानना, भगवान् विष्णु और महादेव में भक्ति-भाव रखना, ये सिद्धों के धर्म कहे गये हैं।

(४) गन्धर्वों के धर्म

उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता।

सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते।। (अ. ११/१८)

अपने से उत्कृष्ट की, बड़े की उपासना करना, नृत्य एवं वाद्य-यन्त्र बजाने में कुशल होना, सरस्वती में अचल भक्ति रखना, गन्धर्वों का धर्म कहा गया है।

(५) विद्याधरों का धर्म

विद्याधरत्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः।
विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च।। (अ. ११/१९)

विद्या को धारण करना, अतुलज्ञान, पुरुषार्थ में बुद्धि को युक्त करना और भवानी (दुर्गा) में भक्ति रखना, विद्याधरों के धर्म हैं।

(६) किन्नरों का धर्म

गन्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा।
कौशल्यं सर्व शिल्पानां धर्मः किंपुरुषः स्मृतः॥ (अ. ११/२०)

गान्धर्वविद्या (संगीत-नृत्य) को जानना, सूर्य भगवान् में भक्ति तथा सब प्रकार की शिल्प--कलाओं में कुशलता, किन्नरों का धर्म कहा गया है।

(७) पितरों का धर्म

ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढः।
सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृति।। (अ. ११/२१)

ब्रह्मचर्य, अनभिमान योगाभ्यास में अत्यन्त प्रीति, सब स्थानों में इच्छा अनुसार भ्रमण करना, पितरों का धर्म कहा गया है।

(८) ऋषियों का धर्म

ब्रह्मचर्य यताशित्वं जप्यं ज्ञानं च राक्षस।
नियमाद्धर्म वेदित्वमार्षो धर्मः प्रचक्षते।। (अ. ११/२२)

सदा ब्रह्मचर्य में स्थित रहना, सत्य बोलना, जप करना, ज्ञान युक्त होना, नियम और धर्म को जानना, ऋषियों का धर्म कहा गया है।

(९) मनुष्यों का धर्म

स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च।
अकार्पण्यमनायासं दयाऽहिंसा क्षमा दमः ॥ (अ. ११/२३)
जितेन्द्रियत्वं शौचं च माङ्गल्यं भक्तिरुच्यते।
शंकरे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः ॥ (११/२४)

वेदों को पढ़ना, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना, दान लेना और देना, यज्ञ करना और कराना, कृपणता और श्रम को त्यागना, दयावान् होना, हिंसा न करना, क्षमा आदि से युक्त होना, इन्द्रियों को वश में रखना, पवित्रता, मांगलिक कर्म करना, विष्णु, महादेव, सूर्य और देवी में भक्ति रखना, मनुष्यों का धर्म है।

(१०) गुह्यकों का धर्म

धनाधिपत्यं भोगानि स्वाध्यायं शंकरार्चनम्।
अहंकारम शौण्डीर्यं धर्मोऽयं गुहयकेष्विति।। (अ. ११/२५)

धन का स्वामी होना, जीवन के सुखों का उपयोग करना, वेद का पढ़ना, शंकर की उपासना, अहंकार तथा धूर्त्तता, यह गुह्यकों का धर्म है।

(११) राक्षसों का धर्म

परदारावमशित्वं पारक्येऽर्थे च लोलुपा (लोलता)।
स्वाध्यायं त्र्यम्बके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः ॥ (अ. ११/२६)

परस्त्री के साथ सहवास, पराये धन की इच्छा करना, वेद का पढ़ना और महादेव की भक्ति करना, यह राक्षसों का धर्म कहा गया है।

(१२) पिशाचों का धर्म

अविवेकंमथाज्ञानं शौचहानिरसत्यता।
पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिषगृध्नुता।। (अ. ११/२७)

अविवेक, अज्ञान, अपवित्रता, असत्यता एवं सदा मांस-भक्षण की प्रवृत्ति, ये पिशाचों के धर्म है।

●●

गजेन्द्र-मोक्ष स्तोत्र

ॐ नमो मूलप्रकृतये अजिताय महात्मने। अनाश्रिताय देवाय निःस्पृहाय नमोऽस्तु ते।।३१॥ नम आद्याय बीजाय आर्षेयाय प्रवर्तिने। अनन्तराय चैकाय अव्यक्ताय नमो नमः॥३२॥नमो गुह्याय गूढाय गुणाय गुणवर्तिने।अप्रतक्र्याप्रमेयाय अतुलाय नमो नमः॥३३॥नमः शिवाय शान्ताय निश्चिन्ताय यशस्विने।सनातनाय पूर्वाय पुराणाय नमो नमः।।३४॥

गजेन्द्र बोला—ॐ मूलप्रकृतिस्वरूप महान् आत्मा अजित विष्णुभगवान् को नमस्कार है। अन्यों पर आश्रित न रहने वाले एवं (किसी वस्तु की प्राप्ति की) इच्छा से रहित आप देव को नमस्कार है। आद्यबीजस्वरूप, ऋषियों के आराध्यदेव संसार चक्र के प्रवर्तक आपको नमस्कार है। अन्तर रहित—सर्वत्र व्याप्त एकमात्र अव्यक्त को पुनः-पुनः नमस्कार है। गुह्य, गूढ़, गुणस्वरूप एवं गुणों में रहने वाले को नमस्कार है। तर्क से अतीत, निर्णयात्मिका बुद्धि से नहीं समझे जाने योग्य, अतुलनीय (आप) को बार-बार नमस्कार है। प्रथम मङ्गलमय, शान्त, निश्चिन्त, यशस्वी, सनातन और पुराण-पुरुष को बार-बार नमस्कार है॥ ३१-३४॥

नमो देवाधिदेवाय स्वभावाय नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः॥३५॥ नमोऽस्तु पद्मनाभाय नमो योगोद्भवाय च। विश्वेश्वराय देवाय शिवाय हरये नमः॥३६॥ नमोऽस्तु तस्मै देवाय निर्गुणाय गुणात्मने। नारायणाय विश्वाय देवानां परमात्मने।।३७॥

नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय।।३८॥

आप देवाधिदेव को नमस्कार है। स्वभावस्वरूपी आपको बार-बार नमस्कार है। जगत् की प्रतिष्ठा करने वाले (आपको) नमस्कार है। गोविन्द को बार-बार नमस्कार है। पद्मनाभ को नमस्कार है और योग से उत्पन्न होने वाले (आप) योगोद्भवको नमस्कार है। विश्वेश्वर, देव, शिव, हरि को नमस्कार है। निर्गुण और गुणात्मा उन (प्रसिद्ध) देव को नमस्कार है। विश्वात्मा, नारायण एवं देवों के परम आत्मा (आपको) नमस्कार है। कारणवश वामनरूप धारण करने

वाले, अतुल विक्रमवाले नारायण को नमस्कार है। श्री, शार्ङ्ग, चक्र, तलवार एवं गदा धारण करने वाले उन पुरुषोत्तम को नमस्कार है ॥३५-३८॥

गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय सिंहाय दैत्यनिधनाय चतुर्भुजाय।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिचारणसंस्तुताय देवोत्तमाय वरदाय नमोऽच्युताय॥३९॥
नागेन्द्रदेहशयनासनसुप्रियाय गोक्षीररहेमशुकनीलघनोपमाय।
पीताम्बराय मधुकैटभनाशनाय विश्वाय चारुमुकुटाय नमोऽजराय।।४०॥
नाभिप्रजातकमलस्थचतुर्मुखाय क्षीरोदकार्णवनिकेतयशोधराय।
नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय सर्वेश्वराय वरदाय नमो वराय।।४१॥
भक्तिप्रिपाय वरदीप्तसुदर्शनाय फुल्लारविन्दविपुलायतलोचनाय।
देवेन्द्रविघ्नशमनोद्यतपौरुषाय योगेश्वराय विरजाय नमो वराय॥४२॥

गुह्य, वेदनिलय, महोदर, दैत्य के निधन के लिए सिंहरूप धारण करने वाले, चार भुजाओं वाले, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, मुनि तथा चारणों के द्वारा स्तुत किए गए वरदानी देवोत्तम अच्युत भगवान् को नमस्कार है। शेषनाग के शरीर पर प्रसन्नतापूर्वक शयन करने वाले, गोदुग्ध, स्वर्ण, शुक एवं नीलघन की उपमा से युक्त, पीला वस्त्र धारण करने वाले, मधु-कैटभ का विनाश करने वाले, सुन्दर मुकुट धारण करने वाले, वृद्धावस्था से रहित, विश्व की आत्मा आप देव को नमस्कार है। नाभि से उत्पन्न हुए कमल पर स्थित ब्रह्मा से युक्त, क्षीर समुद्र को अपना निवास बनाने वाले, यशस्वी, अनेक प्रकार के विचित्र मुकुट एवं अङ्गद आदि आभूषणों से युक्त, वरदानी तथा वरस्वरूप सर्वेश्वर को नमस्कार है। भक्ति के प्रेमी, श्रेष्ठ दीप्ति से सर्वथा पूर्ण सुन्दर दिखलायी देने वाले, खिले हुए कमल के समान विशाल आँखों वाले, देवेन्द्र के विघ्नों का विनाश करने के लिए पुरुषार्थ करने को उद्यत, वरस्वरूप, विरज योगेश्वर को नमस्कार है।। ३९-४२॥

ब्रह्मायनाय त्रिदशायनाय लोकाधिनाथाय भवापनाय।
नारायणायात्महितायनाय महावराहाय नमस्करोमि।।४३॥
कूटस्थमव्यक्तमचिन्त्यरूपं नारायणं कारणमादिदेवम्।
युगान्तशेषं पुरुषं पुराणं तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये।।४४॥
योगेश्वरं चारुविचित्रमौलिमज्ञेयमग्र्यं प्रकृतेः परस्थम्।
क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये।।४५॥

अदृश्यमव्यक्तमचिन्त्यव्ययं महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम्।
वदन्ति यं वै पुरुषं सनातनं तं देवगुह्यं शरणं प्रपद्ये।।४६।।

ब्रह्मा और अन्य देवों के आधारस्वरूप, लोकाधिनाथ, भवहर्त्ता, नारायण आत्महित के आश्रय-स्थान महावराहको नमस्कार करता हूँ। मैं कूटस्थ, अव्यक्त, अचिन्त्य रूप वाले, कारणस्वरूप, आदि देव नारायण, युगान्त में शेष रहने वाले पुराणपुरुष, देवाधिदेव की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं योगेश्वर, सुन्दर विचित्र रंगों से युक्त मुकुट को धारण करने वाले, अज्ञेय, सर्वश्रेष्ठ, प्रकृति के परे अवस्थित, क्षेत्रज्ञ, आत्मप्रभव, वरेण्य उन वासुदेव की शरण ग्रहण करता हूँ। ब्रह्मर्षिजन जिन्हें अदृश्य, अव्यक्त, अचिन्तनीय, अव्यय, ब्रह्ममय और सनातन पुरुष कहते हैं, उन देवगुह्य की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।।४३-४६।।

यदक्षरं ब्रह्म वदन्ति सर्वगं निशम्य यं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।
तमीश्वरं तृप्तमनुत्तमैर्गुणैः परायणं विष्णुमुपैमि शाश्वतम्।।४७।।
कार्यं क्रिया कारणमप्रमेयं हिरण्यबाहुं वरपद्मनाभम्।
महावलं वेदनिधिं सुरेशं व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम्।।४८।।
किरीट केयूर महार्हनिष्कैर्मण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम्।
पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं मालाधरं केशवमभ्युपैमि।।४९।।
भवोद्भवं वेदविदां वरिष्ठं योगात्मनां सांख्यविदां वरिष्ठम्।
आदित्यरुद्राश्विवसुप्रभावं प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमात्मवन्तम्।।५०।।

(ब्रह्मवेत्ता) जिसे अक्षर एवं सर्वव्यापी ब्रह्म कहते हैं तथा जिसके श्रवण से मृत्यु के मुख से मुक्ति मिल जाती है, मैं उसी श्रेष्ठ गुणों से युक्त, आत्मतृप्त, शाश्वत आश्रयस्वरूप ईश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप, प्रमाण से अगम्य, हिरण्यबाहु, नाभि में श्रेष्ठ कमल धारण करने वाले, महाकल्याणी, वेदों की निधि, सुरेश्वर जनार्दन विष्णु की शरण में जाता हूँ। मैं किरीट, केयूर एवं अतिमूल्यवान् श्रेष्ठ मणियों के सुसज्जित समस्त शरीर वाले, पीताम्बर धारण करने वाले, स्वर्णिम पत्र-रचना से अलंकृत, माला धारण करने वाले केशव की शरण में जाता हूँ। मैं संसार को उत्पन्न करने वाले, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, योगात्माओं तथा संख्याओं ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार एवं वसुओं के प्रभाव से युक्त अच्युत, आत्मस्वरूप प्रभु की

शरण ग्रहण करता हूँ।।४७-५०।।

श्रीवत्साङ्कं महादेवं देवगुह्यमनौपमम्। प्रपद्ये सूक्ष्ममचलं वरेण्यमभयप्रदम्।।५१।।प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेश्वरम्।प्रपद्ये मुक्तसङ्गानां यतीनां परमां गतिम्।।५२।। भगवन्तं गुणाध्यक्षमक्षरं पुष्करेक्षणम्।शरण्यं शरणं भक्त्या प्रपद्ये भक्तवत्सलम्।।५३।। त्रिविक्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम्। योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम्।।५४।। आदिदेवमजं शम्भुं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्। नारायणमणीयांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम्।।५५।।

मैं श्रीवत्स-चिह्न धारण करने वाले, महान् देव, देवताओं में गुह्य, उपमा से रहित, सूक्ष्म, अचल तथा कला देने वाले वरेण्य देव की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं समस्त प्राणियों की सृष्टि करने वाले, निर्गुण, निःसङ्ग, वन और नियम का पालन करने वाले संन्यासियों की परम गतिस्वरूप परमेश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं गुणाभक्त, अक्षर, कमलनयन, आश्रय ग्रहण करने योग्य, शरण देने वाले, भक्तों से प्रेम रखने वाले भगवान् की श्रद्धापूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ। मैं तीन पगों में तीनों लोकों को नाप लेने वाले, तीनों लोकों के ईश्वर, सभी के प्रपितामह, योग की मूर्ति, महात्मा जनार्दन की शरण ग्रहण करता हूँ। मैं आदिदेव, अजन्मा, शम्भु, व्यक्त और अव्यक्तस्वरूप, सनातन, परम सूक्ष्म, ब्राह्मणप्रिय नारायण की शरण ग्रहण करता हूँ।। ५९-५५।।

नमो वराय देवाय नमः सर्वसहाय च। प्रपद्ये देवदेवेशमणीयांसमणोः सदा।।५६।। एकाय लोकतत्त्वाय परतः परमात्मने। नमः सहस्रशिरसे अनन्ताय महात्मने।।५७।। त्वामेव परमं देवमृषयो वेदपारगाः। कीर्तयन्ति च यं सर्वे ब्रह्मादीनां परायणम्।।५८।। नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद। सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्।।५९।।

श्रेष्ठ देव को नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् को नमस्कार है। मैं सदा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म देव देवेश की शरण हूँ। लोकतत्त्वस्वरूप, एकमात्र, परात्पर परमात्मा, सहस्रशीर्ष महातमा अनन्त को नमस्कार है। वेदों के पारगामी ऋषिगण आपको ही परम देव एवं ब्रह्मा आदि देवों का आश्रयस्थान कहते हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! हे भक्तों को अभभदान देने वाले! आपको नमस्कार है। सुब्रह्मण्य! आपको नमस्कार है। आप मुझ शरणागत की रक्षा करें। ५६-५९।।

सारस्वत विष्णु-स्तोत्र

श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तथाऽन्येषां न पापिनाम्। समस्तपापशुद्ध्यर्थे पुण्योपचयदं च यत्।।६४।। प्रातरुत्थाय जप्तव्यं मध्याह्नेऽह्नः क्षयेऽपि वा। असंशयं सदा जप्यो जपतां पुष्टिशान्तिदः।।६५।। ॐ हरिं कृष्णं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्। प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु।।६६।। चराचरगुरुं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम्। प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु।।६७।। शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम्। प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः स मे पापं व्यपोहतु।।६८।। दामोदरमुदाराक्षं पुण्डरीकाक्षमच्युतम्। प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यैः स मे पापं व्यपोहतु।।६९।। नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम्। प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु।।७०।।

ब्राह्मणने कहा—(निशाचर!) सुनो! तुम्हारे और दूसरे अन्य पापियों के लिए कल्याणकर सारे पापों की शुद्धि एवं पुण्य बढ़ाने वाले तत्त्वों को मैं कहता हूँ। प्रातःकाल उठकर, मध्याह्न में अथवा सायंकाल इस अपने योग्य स्तोत्र का सदा जप करना चाहिए। यह जप, जप करने वाले को निःसंदेह शान्ति एवं पुष्टि प्रदान करता है। ॐ, हरि, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दन, जगन्नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पाप को दूर करें। चर और अचर के गुरु, नाथ, शेषशय्या पर विराजमान, परमदेव, गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पाप को दूर करें। शङ्ख धारण करने वाले, चक्र धारण करने वाले, शार्ङ्ग धारण करने वाले एवं उत्तम मालाधारी, लक्ष्मी-पति को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पाप को दूर करें। दामोदर, उदाराक्ष, पुण्डरीकाक्ष, स्तवनीय स्तोत्रों से स्तुत अच्युत को मैं नमस्कार करता हूँ। वे मेरे पापों को दूर करें। नारायण, नर, शौरि, माधव, मधुसूदन एवं धरा को धारण करने वाले भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पाप को दूर करें। ६४-७०।।

केशवं चन्द्रसूर्याक्षं कंसकेशिनिषूदनम्। प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु।।७१।। श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम्। प्रणतोऽस्मि श्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु।।७२।। यमीशं सर्वभूतानां ध्यायन्ति यतयोऽक्षरम्। वासुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः।।७३।। समस्तालम्बनेभ्यो यं व्यावृत्य मनसो

गतिम्। ध्यायन्ति वासुदेवाख्यं तमस्मि शरणं गतः ऽ७४॥ सर्वगं सर्वभूतं च सर्वस्थाधारमीश्वरम्। वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणं गतः।।७५॥ परमात्मानमव्यक्तं यं प्रयान्ति सुमेधसः। कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः।।७६॥ पुण्यपापविनिर्मुक्ता यं प्रविश्य पुनर्भवम्। न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरणं गतः।।७७॥ ब्रह्मा भूत्वा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्। यः सृजत्यच्युतो देवस्तमस्मि शरणं गतः।।७८॥

चन्द्र एवं सूर्यरूपी नेत्रों वाले, कंस और केशी को मारने वाले महाबाहु केशव को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापों को दूर करें। वक्षःस्थल पर श्रीवत्स धारण करने वाले, श्रीश, श्रीधर, श्रीनिकेतन एवं श्रीकान्त को मैं प्रणाम करता हूँ। वे मेरे पापों को दूर करें। संयम करने वाले लोग जिन सब प्राणियों के स्वामी, अक्षर एवं अनिर्देश्य वासुदेव का ध्यान करते हैं, मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ। (संन्यासी लोग) अन्य समस्त सहारों से मन की गति को लौटाकर जिस वासुदेव नामक ईश्वर का ध्यान करते हैं, मैं उनकी शरण में जाता हूँ। मैं सर्वगत, सर्वभूत, सर्वाधार ईश्वर एवं वासुदेव नामक परब्रह्म की शरण जाता हूँ। श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न लोग कर्म का नाश होने पर जिन अदृष्ट, अविनाशी, परमात्म देव को प्राप्त करते हैं, मैं उनकी शरण में जाता हूँ। पुण्य तथा पाप से रहित योगी लोग जिन्हें पाकर फिर जन्म ग्रहण नहीं करते, मैं उनकी शरण में जाता हूँ। ब्रह्मा का रूप धारण कर देवता, दैत्य एवं मनुष्यों से युक्त सारे जगत् की सृष्टि करने वाले अच्युत देव की मैं शरण में जाता हूँ।।७१-७८॥

ब्रह्मत्वे यस्य वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयं वपुः। प्रभुः पुरातनो जज्ञे तमस्मि शरणं गतः॥७१॥ ब्रह्मरूपधरं देवं जगद्योनिं जनार्दनम्। स्रष्टृत्वे संस्थितं स्रष्टौ प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८०॥ स्रष्टा भूत्वा स्थितो योगी स्थितावसुरसूदनः। तमादिपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८१॥ धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथा सुराः। येन तं विष्णुमाद्येशं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८२॥ यक्षैर्यजन्ति यं विप्रा यज्ञेशं यज्ञभावनम्। तं यज्ञपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८३॥ पातालवीथीभूतानि तथा लोकान् निहन्ति यः। तमन्तपुरुषं रुद्रं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥८४॥ सम्भक्षयित्वा सकलं यथासृष्टमिदं जगत्। यो वै नृत्यति रुद्रात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम्॥८५॥

सुरासुराः पितृगणाः यक्षगन्धर्वराक्षसाः। सम्भूता यस्य देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥८६॥

ब्रह्मा का रूप धारण करने पर जिनके मुखों से चारों वेदों से युक्त शरीर धारण करने वाले पुरातन प्रभु का आविर्भाव हुआ था, मैं उनकी शरण में जाता हूँ। मैं सृष्टि के लिए स्रष्टारूप से स्थित ब्रह्मरूप धारण करने वाले सनातन जगद्योनि जनार्दन को प्रणाम करता हूँ। सृष्टिकर्ता होकर योगि-रूप में विद्यमान एवं स्थिति काल में राक्षसों का नाश करने वाले आदिपुरुष जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ। मैं उन आदि पुरुष ईश्वर जनार्दन विष्णु को प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने पृथ्वी को धारण किया है, दैत्यों को मारा है एवं देवताओं की रक्षा की है। ब्राह्मण लोग यज्ञों के द्वारा जिनकी अर्चना करते हैं, मैं उन यज्ञ पुरुष, यज्ञभावन, यज्ञेश, सनातन विष्णु को प्रणाम करता हूँ। मैं पाताललोक में रहने वाले प्राणियों तथा लोकों का विनाश करने वाले उन अन्त पुरुष सनातन रुद्र को प्रणाम करता हूँ। सृष्ट किये गये इस समस्त जगत् का भक्षण कर नृत्य करने वाले रुद्रात्मा जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ। मैं सर्वत्र गमन करने वाले देव को प्रणाम करता हूँ, जिनसे समस्त सुर, असुर, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षस उत्पन्न हुए हैं॥ ७९-८६॥

समस्तदेवाः सकला मनुष्याणां च जातयः। यस्यांशभूता देवस्य सर्वगं तं नतोऽस्म्यहम् ॥८७॥ वृक्षगुल्मादयो यस्य तथा पशुमृगादयः। एकांशभूता देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥८८॥ यस्मान्नान्यत् परं किञ्चिद् यस्मिन् सर्वे महात्मानि। यः सर्वमध्योऽनन्तः सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥८९॥ यथा सर्वेषु भूतेषु गूढोऽग्निरिव दारुषु। विष्णुरेवं तथा पापं ममाशेषं प्रणश्यतु।।९०॥ यथा विष्णुमयं सर्वे ब्रह्मादि सचराचरम्। यच्च ज्ञानपरिच्छेद्यं पापं नश्यतु मे तथा।।९१॥ शुभाशुभानि कर्माणि रजःसत्त्वतमांसि च। अनेकजन्मकर्मोत्थं पापं नश्यतु मे तथा।।९२॥ यन्निशायां च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः। सन्ध्ययोश्च कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा।।९३॥ यत् तिष्ठता यद् व्रजता यच्च शय्यागतेन मे। कृतं यदशुभं कर्म कायेन मनसा गिरा। ।९४॥ अज्ञानतो ज्ञानतो वा मदाच्चलितमानसैः। तत् क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥९५॥

मैं उन सर्वव्यापी देव को प्रणाम करता हूँ जिनके अंश से सम्पूर्ण देव एवं

मनुष्यों की सभी जातियाँ उत्पन्न हुई हैं। वृक्ष, गुल्म आदि तथा पशु, मृग आदि जिन परमदेव के एक अंश रूप हैं, मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ। मैं उन सर्वव्यापी देव को प्रणाम करता हूँ जिनसे पृथक् कोई वस्तु नहीं है एवं जिन महात्मा में सम्पूर्ण पदार्थ स्थित हैं तथा जो सभी के अन्त:करण में रहने वाले और अनन्त हैं। काष्ठ में अग्नि के समान समस्त प्राणियों में व्याप्त विष्णु मेरे सम्पूर्ण पापों को नष्ट करें; क्योंकि विष्णु से ब्रह्मा आदि समस्त चराचरात्मक जगत् व्याप्त है तथा जो ज्ञान के द्वारा धारण करने योग्य हैं। इसलिए मेरे पाप नष्ट हो जाएँ। (विष्णु की कृपा से) मेरे शुभ तथा अशुभ कर्म, सत्त्व, रज एवं तमोगुण तथा अनेक जन्मों के कर्म से उत्पन्न पाप नष्ट हो जाएँ। शरीर, कर्म, मन एवं वाणी के द्वारा रात्रि में तथा प्रात:काल, मध्याह्नकाल, अपराह्नकाल और सन्ध्याकाल में चलते, बैठते और शयन करते हुए ज्ञान या अज्ञानपूर्वक अथवा निरहंकार-मन से मैंने जो अशुभ (पाप) कर्म किये हों वे वासु देव के नाम-कीर्तन से शीघ्र नष्ट हो जाएँ।। ८७-९५ ॥ **परदारपरद्रव्यवाञ्छाद्रोहोद्भवं च यत्। परपीड़ोद्भवां निन्दां कुर्वता यन्महात्मनाम् ॥९६ ॥ यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने। तद् यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥९७ ॥ यद् बाल्ये यच्च कौमारे यत् पापं यौधने मम। वय:परिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम् ॥९८ ॥ तन्नारायण गोविन्द हरिकृष्णेश कीर्तनात्। प्रयातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥९९ ॥ विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च। जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नम: ॥१००॥ भविष्यन्नरकघ्नाय नम: कंसविघातिने। अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षयिणे नम: ॥१०१ ॥ कोऽन्यो बलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति। कोऽन्यो नाशयति बलाद् दर्पं हैहयभूषते: ॥१०२ ॥ क: करिष्यत्थाऽन्यो वै सागरे सेतुबन्धनम्। वधिष्यति दशग्रीवं क: सामात्यपुर: सरम् ॥१०३ ॥**

परस्त्री और परधनकी कामना, द्रोह, पर-पीड़ा, महात्माओं की निन्दा तथा (निषिद्ध) भोज्य, पेय, भक्ष्य, चोष्य एवं चाटने वाले वस्तु के कारण उत्पन्न सम्पूर्ण पाप इस प्रकार नष्ट हो जाएँ जैसे लवण रखने वाला मिट्टी का पात्र पानी में (पड़ते ही) नष्ट हो जाता है। नारायण, गोविन्द, हरि, कृष्ण, ईश का कीर्तन करने से बाल्यकाल, कुमारावस्था, यौवन, वार्द्धक्य एवं जन्मान्तर में किये गये

मेरे सम्पूर्ण पाप इस प्रकार नष्ट हो जायें जैसे जल में नमक रखने से मिट्टी का बर्तन विलीन हो जाता (गल जाता) है। हरि, विष्णु, वासुदेव, केशव, जनार्दन, कृष्ण को पुनः-पुनः प्रणाम है। भावी नरक का नाश करने वाले तथा कंस को मारने वाले को नमस्कार है। अरिष्ट, केशी एवं चाणूर आदि राक्षसों के नष्ट करने वाले को नमस्कार है। आपके सिवाय बलि को कौन छल सकता था एवं आपके बिना हैहेय नरेश के घमंड को कौन नष्ट कर सकता था? आपके सिवाय समुद्र में सेतु को कौन बाँध सकता था तथा मन्त्री आदि के साथ ही दशग्रीव रावण को कौन मार सकता था।। ९६-१०३ ॥

कस्त्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रतिमेष्यति।

प्रलम्बपूतनादीनां त्वामृते मधुसूदन। निहन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति। ।१०४॥ जपन्नेवं नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम्। इष्टानिष्टप्रसंगेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।।१०५॥ कृतं तेन तु यत् पापं सप्तजन्मान्तराणि वै। महापातकसंज्ञं वा तपा चैवोपपातकम्॥१०६॥ यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च। नाशयेद् योगिनां सर्वमामपात्रमिवाम्भसि।।१०७॥ नरः संवत्सरं पूर्णे तिलपात्राणि षोडश। अहन्यहनि यो दद्यात् पठत्येतच्च तत्समम्।।१०८॥ अविलुप्तब्रह्मचर्ये सम्प्राप्य स्मरणं हरेः। विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम्॥१०९॥ यथैतत् सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि मे मृषा। राक्षसस्त्रस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु।।११०॥

मधुसूदन! आपके सिवाय कौन ऐसा है जो नन्द के गोकुल में प्रेममयी क्रीड़ा कर सके। देवदेव! आपके सिवा प्रलम्ब और पूतना आदि का वध एवं शासन कौन कर सकता था। इस धर्ममय उत्तम वैष्णव-मन्त्रका जप करने वाला मनुष्य इष्ट और अनिष्ट के प्रसङ्गवश तथा ज्ञान या अज्ञानपूर्वक सात जन्मों में किये अपने महापातकों, उपपातकों, यज्ञ, होम एवं व्रत आदि के पुण्य कर्मों के भी योग को इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे जल में मिट्टी का घड़ा नष्ट हो जाता है। मैं यह सत्य कहता हूँ कि अखण्डित ब्रह्मचर्य एवं हरिस्मरणपूर्वक एक वर्ष तक इस स्तोत्र के पाठ के साथ प्रतिदिन तिल से भरे सोलह पात्रों का दान करने वाला मनुष्य विष्णु लोक को प्राप्त करता है। यदि मैंने यह सत्य कहा हो एवं इसमें अल्पमात्र भी असत्य न हो तो यह राक्षस सब अङ्गों से पीड़ित हो चुके मुझे छोड़ दे।। १०४-११० ॥

●●

डॉ. लीलाधर 'वियोगी'

जन्म १ मार्च, १९३५ ई., कोटला शेर मुहम्मद, ज़ि. डेरा गाज़ीख़ान, (वर्तमान पाकिस्तान)।

शिक्षा एम. ए. (हिन्दी-संस्कृत) साहित्यरत्न, पी-एच. डी.

शिक्षण-कार्य ४१ वर्षों तक अनेक स्तरों पर हिन्दी-संस्कृत-अध्यापन।

कार्यक्षेत्र पलवल, रेवाड़ी, अम्बाला-छावनी,
पूर्व अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी तथा संस्कृत विभाग,
सनातन धर्म कॉलेज (लाहौर), अम्बाला छावनी।

शोध (१) हिन्दी में भक्तमाल परम्परा। (शोध प्रबन्ध)
(२) रामस्नेही सम्प्रदाय के हस्तलिखित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूची।
(३) अनेक शोध-च्छात्रों का निर्देशन।

कृतित्व रसखान की काव्य-कला, रसखान : भक्त और कवि। काव्य कोकिला : मीराबाई। हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास। अभिनव गद्य-गरिमा (सम्पादन)। विभिन्न स्तरीय ग्रन्थों-पत्रिकाओं में अनेक शोधपत्र, समीक्षाएँ सम्मिलित।

काव्य-कृतियाँ द्वापर की त्रासदी, व्याध की व्यथा, बलराम का आत्म-विसर्जन, गन्धारराज शकुनि। 'नारी: एक कविता-यात्रा'

रुचियाँ साहित्यानुराग, संगीत-प्रेम, कलाभिरुचि, प्रकृति-प्रेम, पर्यावरण-संरक्षण, पर्यटन (देश-दर्शन) रक्तदान-अभियान चेतना।

प्रतिबद्धता नैतिक मूल्यों में अटूट आस्था, 'भारतीयता'—राष्ट्रीय-चेतन को समर्पित, साँस्कृतिक गरिमा के अन्वेषक; धार्मिक-आध्यात्मिक दृष्टिकोण।

सामाजिक-कार्य राष्ट्रीय सेवा-योजना के माध्यम से तरुण -तरुणियों के मन में श्रम की गरिमा का बोध, सेवा के द्वारा ज्ञानार्जन, सामूहिक जीवन की उपयोगिता, ग्राम्यजीवन के प्रति आकर्षण, अल्पबचत, निरक्षरता-उन्मूलन, पर्यावरण-संरक्षण आदि में सक्रिय सहयोग। युवा-शक्ति में राष्ट्रीय समस्याओं के संबंध में निरन्तर जागरूकता की प्रेरणा।

सांस्कृतिक/साहित्यिक गतिविधियाँ

युवक समारोह, सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन विद्यार्थियों को 'भाषण-कला' वाद-विवाद, अभिनय, मंच-संचालन का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक प्रशिक्षण देकर उन्हें प्रभावशाली, उत्कृष्ट वक्ता बनने में सहयोग, 'पत्रिका'— सम्पादन के माध्यम से विद्यार्थियों में लेखन की अभिरुचि जागृत करने की प्रेरणा-प्रोत्साहन।

राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तरों पर अनेक साहित्यिक कार्यक्रमों, अधिवेशनों, विद्वत्गोष्ठियों का आयोजन, हिन्दी सा. सम्मेलन, भारतीय सा. परिषद् आदि संस्थाओं में उत्तरदायित्वपूर्ण पदों का दक्षता-पूर्वक निर्वाह।

सम्मान (१) रक्तदान-चेतना, अभियान में विशिष्ट सेवा-सहयोग, प्रेरणा के उपलक्ष्य में हरियाणा के महामहिम राज्यपाल द्वारा राज्य स्तर पर सम्मानित। (१९९३)

(२) भारतीय डाक विभाग के हरियाणा परिमण्डल द्वारा हिन्दी साहित्य-सेवा के लिए सम्मानित (१९९७)।

(३) पुराणों के सम्बन्ध में अध्ययन-लेखन के उपलक्ष्य में 'जगद्गुरु शंकराचार्य चातुर्मास अनुष्ठान आयोजन समिति' की ओर से जगद्गुरु शंकराचार्य, स्वामी दिव्यानंद तीर्थ (भानपुरा पीठ) द्वारा सम्मानित (१९९७)।

(४) साहित्य-कला-संगम, हिसार द्वारा 'हंस कविता पुरस्कार' (१९९९) से सम्मानित।

(५) साहित्य सभा कैथल द्वारा श्री वेद प्रकाश चौधरी स्मृति सम्मान में सम्मानित (२०००)।

(६) राष्ट्रीय-हिन्दी-सेवी सहस्राब्दी सम्मान से सम्मानित। (२०००)

सम्प्रति सेवा-निवृत्ति के पश्चात्—(१) पुराणों का अध्ययन, शोध एवं लेखन। तेरह रचनाएँ प्रकाशित : 'ब्रह्मपुराण-परिचय', विष्णुपुराण-परिचय', 'शिवपुराण-परिचय', पद्मपुराण-परिचय', 'भागवतपुराण-परिचय', 'नारदपुराण-परिचय', मार्कण्डेयपुराण-परिचय', अग्निपुराण-परिचय', 'भविष्यपुराण- परिचय', ब्रह्मवैवर्तपुराण-परिचय, लिंगपुराण-परिचय तथा वराहपुराण-परिचय। (२) काव्य-सृजन।

●●